के प्रति ग्लानिभाव पैदा कराने तथा इसी प्रकार के सम्य-शिष्ट जीवन की विधि समझाने के लिये उपयोगी बातो का समावेश कराने का निश्चय किया था ।

उक्त निर्णयानुसार श्री रतनकुमार जी 'रत्नेश' ने जैन सिद्धान्त परिचय और प्रवेशिका के पाठ्यक्रम की पुस्तको के संपादन लेखन मे उपयोगी बाते सरल, सुबोध शैली मे प्रस्तुत की है । बालको का प्रश्नोत्तरो, लघुकथाओ और गीतो आदि की ओर विशेष आकर्षण होता है और उनसे मिलने वाली शिक्षा को भी वे शीघ्र ग्रहण करते हैं । इसलिए इन पुस्तको मे इन्ही माध्यमो का विशेष ध्यान रखा गया है । पुस्तकें बालोपयोगी होने के साथ ही साधारण पाठक के लिये भी रुचिकर होगी ।

प्रस्तुत पुस्तक मे जैन-सिद्धान्त प्रवेशिका परीक्षा के प्रथम खण्ड के विद्यार्थियो के योग्य पाठ्य-सामग्री सकलित की गई है । यह पुस्तक का पंचम संशोधित सस्करण है ।

इस पुस्तक का प्रकाशन श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम की निधि से जो सघ को साहित्य प्रकाशन आदि कार्यों के लिये प्राप्त हुई है, किया जा रहा है । इसके लिये मण्डल के सभी सदस्यो के आभारी हैं ।

निवेदक—

चम्पालाल डागा

मन्त्री

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.)

अनुक्रमणिका



(शेष कवर ३ पर)

जैनसिद्धांत प्रवेशिका

प्रथम खण्ड

प्रार्थना

वह शक्ति हमे दो दयानिधे !
कर्तव्य मार्ग पर डट जावे ।
पर—सेवा, पर-उपकार मे हम,
निज जीवन सफल बना जावे ।।

हम दीन, दु:खी, निबलो, विकलों,
के सेवक बन सन्ताप हरे ।।
जो हैं भूले भटके अटके,
उनको तारें, खुद तर जावें ।

छल, द्वेष, कपट, पाखण्ड, झूठ ।
अन्याय से निश-दिन दूर रहे ।
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना,
शुचि प्रेम सुधा नित बरसावे ।

निज आन मान मर्यादा का,
प्रभु ध्यान रहे, अभिमान रहे ।
जिस देश जाति मे जन्म लिया,
बलिदान उसी पर हो जावे ।

: णमो णाणस्स :

नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।। १ ।।
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।। २ ।।

शब्दार्थः—

पांच पदों को नमस्कार

१. णमो = नमस्कार हो । अरिहंताणं = अरिहन्तो को । २. णमो = नमस्कार हो । सिद्धाणं = सिद्धो को ३. णमो = नमस्कार हो । आयरियाणं = आचार्यों को । ४ णमो = नमस्कार हो । उवज्झायाणं = उपाध्यायों को । ५. णमो = नमस्कार हो । लोए = लोक में रहे हुए । सव्व = सब । साहूणं = साधुओ को ।

नमस्कार फल

एसो = यह । पंच = पांच । णमोक्कारो = नमस्कार । सव्व = सब । पावप्पणासणो = पापो का नाश करने वाला है । च = और ।

क्यों ?

सव्वेसि = सब । मंगलाणं = मगलो में । पढमं = प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) मगलं = मगल । हवइ = है ।



नमस्कार मन्त्र प्रश्नोत्तरी

प्र० : नमस्कार किसे कहते है ?

उ० : दोनों हाथों को जोड़कर ललाट पर लगाते हुए मस्तक झुकाना ।

प्र० : मन्त्र किसे कहते हैं ?

उ० : जिसमे अक्षर थोड़े हो और भाव वहुत हों ।

प्र० : अरिहन्त किसे कहते है ?

उ० : [अ] जिन्होने—१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. मोहनीय और ४. अन्तराय—इन घातिक चारों कर्मों का अर्थात् अज्ञान, मोह, राग, द्वेष, अन्तराय आदि आत्मा के 'अरि'—शत्रुओ का 'हंत'—नाश किया हो तथा [आ] जो जैन धर्म को प्रकट करते हों, उन्हे अरिहन्त किसे कहते हैं ।

प्र० : सिद्ध किसे कहते हैं ?

उ० : १. जिन्होने आठों कर्मों का क्षय करके अपना आत्म-कल्याण साध लिया हो, तथा २ जो मोक्ष मे पधार गये हों, उन्हे सिद्ध कहते है ।

प्र० : आचार्य किसे कहते है ?

उ० : चतुर्विध सघ के नायक साधुजी, जो स्वय पाच आचार पालते है तथा साधु सघ मे आचार पलवाते है ।

प्र० . उपाध्याय किसे कहते है ?

उ० · शास्त्रो के जानकार अग्रगण्य साधुजी जो स्वयं अध्ययन करते है तथा साधु-साध्वियो को अध्ययन कराते हैं ।

प्र० . साधु किसे कहते हैं ?

उ० : १. जो पांच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति आदि का पालन करते हो । २. सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक्-तप द्वारा आत्म-कल्याण साधते हो ।

प्र० : नमस्कार मत्र मे कितनो को नमस्कार किया है ?

उ० पाच पदो को नमस्कार किया है ।

प्र० : पद किसे कहते है ?

उ० · योग्यता से मिले हुए या दिए हुए (पूज्य) स्थान को पद कहते हैं ।

प्र० : नमस्कार मत्र से क्या लाभ है ?

उ० · सब पापो का नाश होता है ।

प्र० : नमस्कार मत्र से सब पापो का नाश क्यो होता है ?

उ० . क्योकि नमस्कार मत्र सर्वश्रेष्ठ मगल है ।

प्र० : मगल किसे कहते है ?

उ० : जिससे पापो का नाश हो ।

प्र० : क्या नमस्कार मत्र के स्मरण से उसी समय सभी पापो का नाश हो जाता है ?

उ० : नही । १. नमस्कार से पहले पांच पदों के प्रति विनय जगता है । २. पीछे वैसे ही बनने की भावना जगती है । ३. पीछे हम वैसे ही बनते हैं ।
१. विनय से थोड़े पापो का नाश होता से । २. वैसे ही बनने की भावना से अधिक पापो का नाश होता है । ३. वैसे ही बनते-बनते और सिद्ध बनने के पहले सभी पापो का नाश हो जाता है ।

प्र० : नमस्कार मत्र का स्मरण कौन करता है ?

उ० : जो नमस्कार मत्र-स्मरण का लाभ जानता है तथा नमस्कार मत्र पर श्रद्धा रखता है, वह नमस्कार मत्र का स्मरण करता है ।

प्र० : नस्कार मत्र का स्मरण कहा करना चाहिए ?

उ० : नमस्कार मत्र का स्मरण कही भी किया जा सकता है । कम से कम स्मरण करने वाले को प्राय एकान्त स्थान मे या धर्म के स्थान पौषधशाला आदि मे या मुनि-महासतियो के स्थान में या स्वधर्मी बन्धु-बहिनों के साथ वाले स्थान मे नमस्कार मत्र का स्मरण करना चाहिए ।

प्र० : नमस्कार मन्त्र का स्मरण कब करना चाहिए ?

उ० : जब भी समय मिले । कम से कम नित्य प्रात काल उठते समय और रात्रि को सोते समय नमस्कार मत्र का स्मरण अवश्य करना चाहिए । नये कार्य के आरम्भ के समय भी अवश्य स्मरण करना चाहिए ।

प्र० : नमस्कार मत्र का स्मरण किन भावो से करना चाहिए?

उ० : १. आप (अरिहतादि) पाचों नमस्कार करने योग्य हैं । २. मैं भी आप जैसा बनने का शीघ्र प्रयास करूंगा ।

३. मेरे सभी पापो का नाश हो ।

प्र० : नमस्कार मन्त्र का स्मरण कितनी वार करना चाहिए ?

उ० : एक, दो, तीन, चार, पाच आदि जितनी वार बन सके, उतनी वार करना चाहिए । प्रतिदिन माला के द्वारा १०८ वार या अनुपूर्वी के द्वारा १२० वार नमस्कार मत्र-स्मरण का नियम ग्रहण करना चाहिए ।

प्र० : क्या नमस्कार मत्र से बढकर कोई मंगल है ?

उ० : नही । यह पांच पदो का नमस्कार रूप मंगल सबसे बढकर मंगल है ।

प्र० : इस नमस्कार मत्र का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : परमेष्ठी मत्र ।

प्र० : परमेष्ठी किसे कहते है ?

उ० : जिन्हे हम धार्मिक दृष्टि से सबसे अधिक चाहते हों और हम जिनके समान बनना चाहते हो ।



तिक्खुत्तो : वन्दना पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेमि, वंदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि, कल्लाण मगलं देवयं चेइयं पुज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ।

शब्दार्थ :—

तिक्खुत्तो=तीन बार । **आयाहिणं**=दक्षिण ओर से (सीधी

ओर से) । **पयाहिणं**=प्रदक्षिणा । **करेमि**=करता हूं । **वन्दामि**=वन्दना-स्तुति करता हूं । **नमंसामि**=नमस्कार करता हूं । **सक्कारेमि**=सत्कार करता हूं । **सम्माणेमि**=सम्मान करता हू ।

कल्लाण=(आप) कल्याण रूप है । **मगलं**=मगल रूप हैं । **देवय**=देव रूप हैं । **चेइय**=ज्ञान रूप हैं ।

पज्जुवासामि=पर्युपासना करता हूं । **मत्थएण**=मस्तक से । **वन्दामि**=वन्दना करता हूं ।



तिक्खुत्तो प्रश्नोत्तरी

प्र० : नमस्कार की विशेष विधि क्या है ?

उ० . पांचो अङ्ग झुकाकर नमना ।

प्र० : पांच अङ्ग कौन कौन से ?

उ० : दो घुटने, दो हाथ और एक मस्तक ।

प्र० : पांच अङ्ग कैसे झुकाने चाहिए ?

उ० : पहले तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए । पीछे दोनों घुटनों को भूमि पर झुकाने के लिए दोनो हाथों को भूमि पर रखना चाहिए । पीछे दोनो घुटने भूमि पर टिकाने चाहिए । पीछे दोनो हाथ जोड़कर ललाट पर लगाते हुए स्तुति आदि करना चाहिए । पीछे जुड़े हुए दोनो हाथो सहित मस्तक को भूमि तक झुकाना चाहिए । इस प्रकार पाचो अङ्ग झुकाने चाहिये ।

प्र० : प्रदक्षिणा के कुछ दृष्टान्त दीजिए ।

उ० : १. मन्दिरों में मूर्ति-पूजा के समय जैसे आरती उतारी जाती है, इस प्रकार प्रदक्षिणा देनी चाहिए। २. तोल को बताने वाले यन्त्रो के काटे या गति को बताने वाले (वाहनो मे लगे) यन्त्रों के काटे जिस प्रकार घूमते हैं, वैसी प्रदक्षिणा देनी चाहिए । ३ चक्रो मे गोलाकृति वाक्य जैसे लिखे जाते हैं, वैसी प्रदक्षिणा देनी चाहिए । कोई-कोई इससे ठीक उल्टी प्रदक्षिणा मानते हैं ।

प्र० : प्रदक्षिणा किसे कहते हैं ?

उ० . पहले दोनों हाथो को गले के पास जोड़ना । फिर उन्हे वन्दनीय के दायें और अपने बायें कानों की ओर ऊपर ले जाना । पश्चात् सिर पर ले जाना । पश्चात् वन्दनीय के बाये और अपने दायें कानो की ओर नीचे लाना । पश्चात् उन्हे गले तक ले आना । इस प्रकार जुडे हाथो को चक्र के आकार गोल आवर्तन देकर (घुमाकर) मस्तक पर स्थापन करना और जुडे हाथों सहित मस्तक को कुछ झुकाना ।

प्र० : प्रदक्षिणा क्यों की जाती है ?

उ० . जिन्हे हम नमस्कार करते हैं, वे हमारे केन्द्र बनें और हमारी आत्मा उनकी आज्ञा की परिधि मे रहे—यह श्रद्धा और भावना प्रकट करने के लिए ।

प्र० : प्रदक्षिणा तीन बार क्यो की जाती है ?

उ० : १. अपनी पहली बताई हुई श्रद्धा और भावना की दृढता प्रकट करने के लिए । २. वन्दनीय मे रहे हुए

ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीन गुणों को वन्दन करने के लिए।

प्र० वन्दना का अर्थ स्तुति है या नमस्कार ?

उ० : वन्दना का प्रसिद्ध अर्थ नमस्कार है, परन्तु यहां और कही-कही वन्दना का अर्थ स्तुति भी होता है।

प्र० : सत्कार किसे कहते हैं !

उ० (क) अरिहतादि की स्तुति करना, (ख) उनका स्वागत करना, (ग) उन्हे आहार, वस्त्र, पात्र आदि देना।

प्र० सम्मान किसे कहते हैं ?

उ० (क) अरिहतादि को अपने से बड़ा मानना, (ख) उन्हें नमस्कार करना, (ग) उनसे अपना आसन नीचा रखकर अपने से उन्हे ऊचा स्थान देना।

प्र० : तिक्खुत्तो के पाठ मे सत्कार-सम्मान कैसे किया गया ?

ऊ० : आप कल्याणरूप, मगलरूप देवरूप और ज्ञानवान हैं— यह कहकर स्तुति करते हुए सत्कार किया गया है तथा पचांग नमस्कार करके सम्मान किया गया है !

प्र० कल्याण और मगल किसे कहते हैं ?

उ० पुण्य मिलना या सद्गुण प्रकट होना कल्याण है तथा पाप खपना या दुर्गुण नष्ट होना मगल है।

प्र० क्या अरिहत आदि भी देवता है ?

उ० हां। जैसे प्राणियो मे शरीर आदि की अपेक्षा देवता बढकर हैं, वैसे ही अरिहत आदि धर्म की अपेक्षा बढकर हैं, इसलिए वे धार्मिक देवता है।

प्र० : पर्युपासना किसे कहते हैं ?

उ० : (क) नम्र आसन से हाथ जोड़कर अरिहतादि के मुंह के सामने सुनने की इच्छा सहित बैठना, कायिक पर्युपासना है। (ख) अरिहतादि जो उपदेश करें, उसे सत्य कहना और सत्य मानना वाचिका पर्युपासना है। (ग) उपदेश के प्रति अनुराग रखना और उसे पालने की भावना बनाना मानसिक पर्युपासना है।

प्र० : वन्दना कहा करनी चाहिए ?

उ० १. यदि अरिहतादि अपने नगर-गाव आदि मे विराजे हो, तो उनकी सेवा में पहुंचकर वन्दना करने से महाफल होता है। यदि बहुत दूर हो, तो उत्तर या पूर्व दिशा मे दोनो दिशा के बीच ईशानकोण में मुंह करके तथा अपने मन मे उसका स्मरण करते हुए वन्दना करनी चाहिए।

२. सेवा में लगभग साढ़े तीन हाथ दूर रहकर वन्दना करनी चाहिए, जिससे अपने द्वारा उनकी आशातना न हो।

प्र० : वन्दना कब करनी चाहिए ?

उ० : १. नित्य प्रात.काल, सायकाल, सेवा में पहुचते, सेवा से लौटते, व्याख्यान सुनने के पहले व पीछे, ज्ञान ग्रहण करने के पहले व पीछे तथा प्रतिक्रमण के पहले व पीछे, आज्ञादि लेते समय वन्दना करनी चाहिए।
२. जो हमसे बड़े हो, उनकी वन्दना कर लेने के पश्चात् अपना अवसर आने पर वन्दना करनी चाहिए अथवा अधिक सख्या मे होने पर आज्ञा के अनुसार सब साथ

में मिलकर एक स्वर और एक समय में वन्दना करनी चाहिए ।

प्र० : वन्दना कितनी बार करनी चाहिए ?

उ० : तीन बार करनी चाहिए । १०८ बार भी की जा सकती है । भावना की अपेक्षा १००८ बार भी की जा सकती है ।

प्र० : वन्दना से क्या लाभ है ?

उ० : १. अरिहतादि के दर्शन होते हैं । २ जीवन मे विनय आता है । ३ ज्ञानादि शीघ्र प्राप्त होते हैं । ४ धर्म कार्यों में स्फूर्ति रहती है । ५ पापों का नाश और पुण्य का लाभ होता है । ६. दुर्गुण नष्ट होते हैं और सद्गुण खिलते हैं । ७. एक दिन हम भी वन्दनीय बनते है ।



नमस्कार क्रम

सुमति और विमल दोनो सगे बड़े-छोटे भाई थे । उनमें अच्छा प्रेम था । दोनो बुद्धिमान थे । रात्रि मे सोने का समय हुआ । नमस्कार मंत्र गिनने से पहले दोनो मे चर्चा चल पड़ी ।

विमल: हमे पहले सिद्धों को नमस्कार करना चाहिये क्योकि वे मोक्ष में चले गये हैं ।

सुमति: नही, भैया! अरिहंतों ने धर्म को प्रकट किया है,

इसलिए वे हमारे लिए सिद्धों से अधिक उपकारी है। इसके अतिरिक्त सिद्ध हमे दिखाई भी नही देते उनकी पहिचान भी अरिहत ही कराते है। अतः अरिहतो को ही पहले नमस्कार करना चाहिए।

विमल: यदि तुम्हारा कहना उचित है, तो अरिहत और सिद्धो से भी आचार्य आदि को पहले नमस्कार करना चाहिये, क्योकि आज वे हमारे लिए अरिहतो और सिद्धो से भी विशेष उपकारी है।

परन्तु दोनो को एक दूसरे की वात नही जंची। उन्होने दूसरे दिन अपने गाव में पधारे उपाध्यायश्री से निर्णय कराने का निश्चय किया। पीछे जैसा नमस्कार मंत्र का पाठ था वैसा ही स्मरण कर दोनो सो गये।

दूसरे दिन उठकर नमस्कार मत्र का स्मरण किया। फिर उपाध्यायश्री के दर्शन करने गये। तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दन किया। फिर पर्युपासना के लिए करने लगे। सुमति ने पूछा मत्थएण वदामि। नमस्कार करने लगे। सुमति ने पूछा मत्थएण वंदामि। नमस्कार किनको पहले करना चाहिए ?

उपाध्यायश्री ने दोनो के मन की बात जान ली। उन्होने समझाया—देखो, पाच पदो में पहले दो पद देवो के है और पिछले तीन पद गुरु के हैं।

देव वडे होने है और गुरु छोटे होते है अत. देवो को पहले नमस्कार करना चाहिये और गुरुओ को पीछे नमस्कार करना चाहिए। इसलिए नमस्कार मत्र मे पहले दोनो देवों को और पीछे तीनो गुरुओ को नमस्कार किया गया है।

देवो मे यह देखा जाता है कि जो देव हमारे विशेष

उपकारी हों, उन्हे पहले वन्दना की जाय । अरिहंत सिद्धों से विशेष उपकारी हैं, अत नमस्कार मत्र मे उनको पहले नमस्कार किया गया है और सिद्धों को पीछे नमस्कार किया गया है ।

देवों के समान गुरुओ में भी जो अधिक उपकारी हों, उन्हे पहले नमस्कार करना चाहिये । सबकी दृष्टि मे सामान्य साधुओं से उपाध्याय अधिक उपकारी है क्योकि वे पढाते है । उपाध्याय से भी आचार्य अधिक उपकारी हैं, क्योकि वे आचार पलवाते है । वे सघ के नायक भी होते है । अत. गुरुओं में सबसे पहले आचार्यो को, पीछे उपाध्यायों को, अन्त मे सब साधुओ को नमस्कार करना चाहिए ।

सुमति : क्या सिद्धो को सदा ही अरिहतों से पीछे ही नमस्कार करना चाहिए ?

उपा० : नही । आगे तुम नमस्कार मत्र के सामने एक नमोत्थुणं का पाठ सीखोगे, उसको दो बार बोला जाता है । वहा सिद्धों को पहले नमोत्थुण से पहले नमस्कार किया जाता है और अरिहंतो को दूसरे नमोत्थुण से पीछे नमस्कार किया जाता है जिससे यह जानकारी भी हो जाय कि उपकार-दृष्टि से अरिहंत बड़े है, परन्तु गुण की दृष्टि से सिद्ध ही बड़े है ।

विमल देव बड़े क्यो और गुरु छोटे क्यों ?

उपा० : १ देवो ने आत्म-शत्रुओं को जीत लिया है, पर गुरुओं को जीतना बाकी है । २. देवो में केवल-ज्ञान (सम्पूर्ण ज्ञान) आदि प्रकट हो चुके है, पर गुरुओं

मे प्रकट होना बाकी है । ३ अरिहतो के उपदेश के कारण ही आज गुरु हैं । यदि अरिहत उपदेश न देते, तो आज हमे गुरु ही नही मिलते । गुरु भी देवो को नमस्कार करते है ।

विमल : क्या अरिहत और सिद्ध दोनो एक स्थान पर खडे मिल सकते है ?

उपा० : नही । क्योकि अरिहत इस लोक मे रहते हैं और सिद्ध मोक्ष मे पधारे हुए होते हैं ।

अपने प्रश्नो का समाधान हो जाने पर दोनो भाई उपाध्याय श्री को वदनादि करके अपने घर लौट गये ।



जैन धर्म

धर्मनाथ और शान्तिनाथ दोनो विद्यार्थी थे । दोनो को नमस्कार मत्र और तिक्खुत्तो आता था । वे दोनों जीव-अजीव आदि भी जानने लगे थे । एक बार नगर मे आचार्य श्री पधारे । उन्होने उठते ही नमस्कार मन्त्र का स्मरण किया । प्रात.काल होने पर आचार्यश्री के दर्शन के लिए गये । तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन किया । पीछे पर्युपासना करते हुए प्रश्न पूछने लगे ।

प्र० : भन्ते ! (आचार्यश्री को सम्बोधन) नमस्कार मंत्र तथा जीव-अजीव आदि पर श्रद्धा रखने वाला क्या कहलाता है ?

उ० : जैन ।

प्र० : जैन किसे कहते हैं ?

उ० : जो जिन भगवान् द्वारा बताये हुए धर्म पर श्रद्धा रखता हो, पालन करता हो ।

प्र० : जिन किन्हे कहते हैं ?

उ० : अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अन्तराय—ये हमारी आत्मा के अरि = शत्रु है । इन्हे जिन्होंने हन्त = नष्ट कर दिया है, वे अरिहत कहलाते हैं । आत्मा के शत्रुओ पर विजय पाने के कारण अरिहत को जिन कहा जाता है ।

प्र० : धर्म किसे कहते हैं ?

उ० : जो जीवो को दुर्गति में पडते हुए बचावे तथा सुगति मे ले जावे, उसे धर्म कहते हैं ।

प्र० . धर्म क्या है ?

उ० : १ सम्यग् ज्ञान, २. सम्यग् दर्शन, ३. सम्यग् चारित्र तथा ४. सम्यग् तप ।

प्र० : ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ० : लोकगत वस्तुओं की सही जानकारी करना ज्ञान कहलाता है ।

प्र० : दर्शन किसे कहते हैं ?

उ० : अरिहंत द्वारा बताये हुए तत्त्वो पर श्रद्धा रखना ।

प्र० : चारित्र किसे कहते हैं ?

उ० : महाव्रत या अणुव्रतादि का पालन करना ।

प्र० : तप किसे कहते हैं ?

उ० उपवास आदि करके काया आदि को तपाना तथा प्रायश्चित आदि करके मन आदि को तपाना।

प्र० जैन कितने प्रकार के होते हैं ?

उ० तीन प्रकार के होते। १. श्रद्धा रखने वाले, २. श्रद्धा के साथ थोडा चारित्र (अणुव्रतादि) पालने वाले, ३ श्रद्धा के साथ पूरा चारित्र (पांचो महाव्रत) पालने वाले।

प्र० इनके नाम क्या है ?

उ० पहले और दूसरे प्रकार के जैन, श्रावक और श्राविका कहलाते हैं। तीसरे प्रकार के जैन, साधु और साध्वी कहलाते है।

प्र० : तो क्या हम भी श्रावक हैं ?

उ० : हा।

प्र० श्रावक, श्राविका और साधु, साध्वी आपस में क्या लगते हैं ?

उ० स्वधर्मी।

प्र० स्वधर्मी किसे कहते हैं ?

उ० जो हमारे जैन धर्म पर श्रद्धा रखता हो, जैन धर्म का पालन करता हो।

प्र० जैन धर्म से इस लोक मे क्या लाभ है ?

उ० १ ज्ञान से हमारी बुद्धि विकसित होती है। २ श्रद्धा से हम पर असत्य का चक्र नही चलता है। ३. अहिंसा से वैर-विरोध शांत होता है, मैत्री बढती है, समय पर रक्षक मिलते हैं। सत्य से विश्वास बढ़ता

है, प्रामाणिकता बढ़ती है। अचौर्य और ब्रह्मचर्य से सब स्थानो मे प्रवेश मिलता है। कोई सन्देह नहीं करता। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ और बलवान रहता है। अपरिग्रह से तन-मन को अधिक विश्राम मिलता है। ४. बाह्य तप से रोग नष्ट होते हैं। शरीर नीरोग रहता है। आन्तरिक तप से लोग हमारा आदर करते है। हमें निमन्त्रण देते हैं–इत्यादि जैन धर्म से इस लोक मे कोई लाभ हैं?

प्र० : जैन धर्म से परलोक में क्या लाभ है?

उ० : १. ज्ञान के द्वारा समझने को शक्ति, स्मरणशक्ति, तर्क-शक्ति तेज होती हैं। २. श्रद्धा से देव गति, मनुष्य गति मिलती है। आर्यक्षेत्र मिलता है। अच्छा कुल मिलता है। ३. अहिंसा से दीर्घ आयुष्य मिलता है, नीरोग काया मिलती है। सत्य से मधुर कंठ और प्रिय वाणी मिलती है। अचौर्य से चोर का वश नही चलता। ब्रह्मचर्य से पांचो इन्द्रियां मिलती हैं। इन्द्रियां सतेज रहती हैं। अपरिग्रह से धनवान कुल में जन्म होता है। कही पर भी सम्पत्ति का विनाश नही होता। ४. तप से किसी प्रकार दुःख या शोक नही होता। एक दिन मोक्ष मिलता है।

प्र० : जैन धर्म से तात्कालिक लाभ क्या हैं?

उ० : १. ज्ञान से जीव-अजीवादि तत्त्वो का ज्ञान होता है। २. दर्शन से (अरिहत की वाणी पर) जीव अजीवादि तत्त्वो पर श्रद्धा होती है। ३. चारित्र से कर्म बंधते हुए रुकते हैं। ४. तप से पुराने कर्म-क्षय होते हैं।

अपने प्रश्नो का समाधान हो जाने पर दोनो मित्र आचार्य श्री को वदनादि करके घर लौट गये ।



तीर्थकर और तीर्थ

जिनदास एक भला शिक्षार्थी था । उसकी स्मरण शक्ति तेज थी । वह कक्षा में छात्रो से व्यर्थ बातचीत नही करता था । शिक्षक जो सिखाते, उसे वह ध्यान से सुनता और मन लगाकर कंठस्थ करता ।

वह जैन पाठशाला से घर लौटा । उसकी मा उसे बहुत चाहती थी, क्योकि उसमें शिक्षार्थी के गुण थे । माता ने उसे दूध पिलानें के पश्चात् पूछा—

मां : बेटा जिनदास ! कहो आज क्या सीखे ?

पुत्र : आज मैं कई नई बाते सीख कर आया हूं । आज श्रावक जी ने पहले हमें अरिहन्त देव का एक नया नाम बताया—'तीर्थंकर' ।

मां : बेटा ! तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

पुत्र : मां ! जो तिराता है, उसे तीर्थ कहते हैं । अरि-हन्तों के प्रवचन धर्म, उपदेश) हमे ससार से तिराते हैं, अत: अरिहन्तो के प्रवचन को तीर्थ कहते है । अरिहन्त प्रवचन रूप तीर्थ को प्रकट करते हैं, इस-लिए अरिहन्तो को तीर्थंकर कहा जाता है ।

मां : बेटा जानते हो, कितने तीर्थंकर हुए ?

पुत्र : हां, भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर हो चुके है किन्तु इस अवसर्पिणी मे चौवीस तीर्थंकर हुए । उसके नाम इस प्रकार है.—

१. श्री ऋषभदेव जी	१३. श्री विमलनाथ जी
२. श्री अजितनाथ जी	१४. श्री अनन्तनाथ जी
३. श्री सम्भवनाथ जी	१५. श्री धर्मनाथ जी
४. श्री अभिनन्दन जी	१६. श्री शान्तिनाथजी
५. श्री सुमतिनाथ जी	१७ श्री कुन्थुनाथ जी
६. श्री पद्मप्रभु जी	१८ श्री अरनाथ जी
७. श्री सुपार्श्वनाथ जी	१९. श्री मल्लिनाथ जी
८. श्री चन्द्रप्रभ जी	२०. श्री मुनिसुव्रत जी
९. श्री सुविधिनाथ जी	२१. श्री नमिनाथ जी
१०. श्री शीतलनाथ जी	२२. श्री अरिष्टनेमि जी
११. श्री श्रेयांसनाथ जी	२३. श्री पार्श्वनाथ जी
१२. श्री वासुपूज्य जी	२४. श्री महावीरस्वामीजी

मा : हम ९ वे तीर्थंकर जी को श्री पुष्पदन्तजी और २२ वे को श्री नेमिनाथ जी कहते हैं ।

पुत्र : मा ! ये ९ वे और २२ वे तीर्थंकर के दूसरे नाम है ।

मां : क्या दूसरे तीर्थंकर के भी दूसरे नाम हैं ?

पुत्र : हां, जैसे १ श्री ऋषभदेव जी को श्री आदिनाथ जी और २४ भगवान् महावीरस्वामी जी को श्री वर्धमान स्वामी जी भी कहते हैं ।

मां : बेटा ! हम ७ वे तीर्थंकर को श्री सुपार्श्वनाथ जी और २३ वे तीर्थंकर को श्री पारसनाथ जी कहते है ।

पुत्र : मा ! श्रावक जी ने हमे कहा कि कुछ लोग ऐसे नाम

कहते हैं किन्तु तुम सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ ऐसे नाम कठस्थ करो ।

मां : तीर्थंकरो के नामो के विषय मे श्रावक जी ने और क्या बताया ?

पुत्र : कुछ लोग छठे तीर्थंकर जी को पद्मप्रभु, ८ वें तीर्थंकर जी को चन्दाप्रभ और १८ वें तीर्थंकर जी को अरहनाथ जी कहते है वे अशुद्ध हैं ।

मां : क्या वर्तमान मे भी तीर्थंकर विद्यमान है ?

पुत्र : हा, महाविदेह क्षेत्र मे वर्तमान मे बीस तीर्थंकर विद्यमान है ।

मां : उनके नाम क्या है ?

पुत्र :

१ सीमधर स्वामीजी	११. वज्रधर स्वामीजी
२. युगमन्दिर स्वामीजी	१२. चन्द्रानन स्वामीजी
३. बाहु स्वामी जी	१३. चन्द्रबाहु स्वामीजी
४. सुबाहु स्वामीजी	१४. भुजग स्वामीजी
५ सुजात स्वामीजी	१५ ईश्वर स्वामीजी
६. स्वयप्रभ स्वामीजी	१६. नेमीश्वर स्वामीजी
७ ऋषभानन स्वामीजी	१७. वीरसेन स्वामीजी
८ अनन्तवीर्य स्वामीजी	१८. महाभद्र स्वामीजी
९. सूरप्रभ स्वामीजी	१९. देवयश स्वामीजी
१०. विशालधर स्वामीजी	२०. अजितवीर्य स्वामीजी

मां : जानते हो बेटा ! अपने भगवान् महावीर स्वामीजी के गणधर कितने हुए ?

पुत्र : हां मां ! ग्यारह गणधर हुए । उनके नाम इस प्रकार है:—

१. श्री इन्द्रभूति जी
२. श्री अग्निभूति जी
३. श्री वायुभूति जी
४. श्री व्यक्तभूति जी
५. श्री सुधर्मा स्वामी जी
६ श्री मण्डित जी
७. श्री मौर्यपुत्र जी
८. श्री अकपित जी
९. श्री अचलभ्राता जी
१०. श्री मैतार्य जी
११. श्री प्रभास जी

मां : गणधर किसे कहते हैं, बेटा ?

पुत्र : १. जो भगवान् के (२) उत्पाद (२) व्यय और(३) ध्रौव्य—इन तीन शब्दो मे सब समझ जाते है, २. भगवान् के प्रवचनों को गूंथकर शास्त्र बनाते हैं, तथा ३. साधुओ के गण को धारण करते हैं, उन्हे गणधर कहते हैं।

मां : बेटा ! श्री इन्द्रभूति जी के विषय मे और क्या सीखे ?

पुत्र : श्री इन्द्रभूति जी, श्री महावीर स्वामी के सबसे पहले शिष्य हुए। वे सभी साधुओं मे बड़े थे। उन्हे गौतम गोत्र के कारण श्री गौतम स्वामीजी भी कहा जाता है।

मां : अच्छा बेटा ! अब यह बताओ कि आज हम कितने शास्त्र मानते हैं और आज किन गणधर जी बनाये हुए शास्त्र मिलते हैं ?

पुत्र : मां ! हम बत्तीस शास्त्र मानते हैं और आज श्री सुधर्मा स्वामी जी के बनाये हुए शास्त्र मिलते हैं।

मां : हम तो साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—इन चार को तीर्थ मानते है और तुमने भगवान् की वाणी को तीर्थ बताया—ऐसा क्यो बेटा ?

पुत्र : तिराती तो भगवान् की वाणी ही है, इसलिए तीर्थ वही है। परन्तु वह भगवान् की वाणी साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका के कारण टिकती है। वे स्वय सीखते हैं और दूसरो को सिखाते हैं, इसलिए इन चारो को भी तीर्थ कहते हैं।

मां : बहुत अच्छा बेटा! ये सब सीखी हुई बातें स्मरण रखना।

पुत्र . हा, मा! मैं नित्य उठते ही नमस्कार मन्त्र स्मरण कर अब चौबीस तीर्थंकर के नाम और गणधरो के नाम भी स्मरण किया करूंगा।

तीर्थंकरो ने तिरने का मार्ग बताया। गणधरो ने उसे शास्त्र बनाकर हमारे लिए उपकार किया। उन्हे हम कैसे भूलें! मैं चतुर्विध संघ से प्रेम रखूंगा क्योंकि वे भी तीर्थ के समान हैं। उनसे मुझे तिरने मे बहुत सहायता मिलेगी। जो हमारे सहायक हैं, उन्हे सदा ही हृदय मे रखूंगा।



सम्यक्त्व सूत्र

एक नगर में कुछ मुनिराज पधारे। बहुत से लोग उनके दर्शन के लिए गये।

उस नगर में नेमिचन्द्र आदि लड़के परस्पर अच्छी मित्रता रखते थे। एक लड़के को जब मुनिराज के समाचार मिले, तब उसने घर-घर घूमकर सभी लड़को को इकट्ठा किया।

इकट्ठे होकर वे सभी मुनिराज के दर्शन के लिए चले। मार्ग मे सब ने निश्चय किया कि मुनि दर्शन का लाभ हमें तब अधिक होगा, जब हम उनसे कुछ सीखें और कण्ठ-स्थ करें।

मुनियों के स्थान पर पहुंच कर सबने बड़े-छोटे मुनियों को क्रम से तिक्खत्तो के पाठ से वन्दना की। पीछे सबने मिलकर प्रार्थना की कि मुनिराज! आप हमें कुछ सिखावें।

मुनिराज ने आगे लिखा सूत्र सिखलाया, उसका शब्दार्थ सिखलाया और विवेचन करके समझाया।

सम्यक्त्व सूत्र

१. 'अरिहन्तो' मह देवो २. जावज्जीवाए 'सुसाहुणो गुरुणो ३. 'जिण-पण्णत्त' तत्तं, इअ 'सम्मत्तं' मए गहियं ॥

जावज्जीव = जब तक जीवन है। मह = मेरे। अरिहन्तो = अरिहन्त। देवो = देव है। और सु = सच्चे। साहूणो = साधु। गुरुणो = गुरु हैं। और जिन = अरिहंत द्वारा। पण्णत्तं = कहा

हुआ। तत्तं=धर्म है। इअ=इस प्रकार। मए=मैंने। सम्मत्तं=सम्यक्त्व। गहियं=ग्रहण की है।

जब बालको ने सम्यक्त्व सूत्र और उसका अर्थ कण्ठस्थ करके सुनाया, तब मुनिराज ने समझाये हुए विवेचन के आधार पर पूछा—बताओ, आपके देव कौन है।

बालक : अरिहन्त ही हमारे देव हैं।

मुनि : क्यों ?

बालक : १. अरिहंत देव ने अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अन्तराय आदि आत्मा के सभी आन्तरिक शत्रुओं को जीत लिया है, इसलिए वे सच्चे देव है। जो अरिहंत नही है, जिन्होंने अब तक अरियों का हनन नही किया है, जो शत्रु सहित हैं जो अज्ञानी हैं, निद्रा लेते हैं, मिथ्यात्वी हैं रागी हैं द्वेषी हैं, दुर्बल हैं, वे सच्चे देव नही हो सकते।

मुनि : आपके गुरु कौन हैं ?

बालक : जैन साधु हमारे गुरु हैं।

मुनि : क्यो ?

बालक : 'जिन' ने आत्शा के सभी शत्रुओं को जीता है, इसलिए उनका कहा हुआ धर्म पूर्ण धर्म है और सत्य धर्म है। जैन साधु उस धर्म पर पूरी श्रद्धा रखते है और उसका पूरा पालन करते हैं अतः वे ही सच्चे साधु हैं।

जो जिन' के द्वारा कहे गये धर्म का विश्वास नहीं करते, उसका पालन नही करते, ऐसे साधु अजैन साधु है। वे सच्चे साधु नही हो सकते। जैन साधु

की क्रिया और अर्जन साधु की क्रिया देखने से भी यह प्रकट हो जाता है कि कौन सच्चे है ?

एक अहिसा को ही ले । जैन साधु छहो काय की दया करते हैं । सचित्त जीव–सहित मिट्टी पर पैर भी नही धरते सचित्त पानी नही पीते, आग नही तपते, दीपक नही जलाते (विजली, बैटरी आदि से जलने वाले दीपक, रेडियो, ध्वनिप्रसारक आदि का उपयोग नही करते), वायु के लिए पंखा आदि नही करते । मुह पर मुखवस्त्रिका बाधते हैं । जिसमे मुह से निकली वेग वाली वायु से सचित्त वायु की हिंसा नही हो । कोई दूसरा वनस्पति को छू जाय तो उसे अशुद्ध (असूझता) मानकर भिक्षा भी नही लेते । त्रसकाय की रक्षा के लिये जूते नही पहनते, रजोहरण रखते है रात को पहले उससे आगे की भूमि शुद्ध करके फिर पैर रखते है । रात्रि को विहार नही करते । वाहन पर भी नहीं बैठते । ऐसी अहिसा दूसरे साधुओ मे कहा है ? ब्रह्मचर्य के लिए जैन साधु स्त्री को छूते तक नही तथा फूटी कौडी भी सम्पत्ति के नाम पर नही रखते हैं ।

मुनि . आपका धर्म कौनसा है ?

बालक : जैन धर्म ही हमारा धर्म है ।

मुनि : क्यो ?

बालक · 'जिन का कहा हुआ धर्म जैन धर्म है । वह धर्म पूर्ण धर्म है और सत्य धर्म है । हम उसी पर

विश्वास करते है और शक्ति के अनुसार पालन करते है, इसलिए जैन धर्म ही हमारा धर्म है ।
अन्य धर्म पूर्ण धर्म नही है क्योकि किसी मे केवल ज्ञान मे धर्म माना है, चारित्र मे नही । किसी मे केवल चारित्र मे धर्म माना है, ज्ञान मे नही । कोई केवल भक्ति मानते है और अन्य को आवश्यक नही समझते ।
अन्य धर्म सत्य धर्म नही है, क्योकि उनके शास्त्रो मे कही अहिंसा को परम धर्म वताया और कही हिंसा करने मे महा लाभ वताया है । कही ब्रह्म-चारी को भगवान् वताया है और कही 'बिना पुत्र सुगति नही मिलती, ऐसा कहा है । इसलिए हम उन धर्मो पर विश्वास नही करते ।

मुनि : दृष्टि किसे कहते है ?

बालक : श्रद्धा (मत, विचार) को दृष्टि कहते है ।

मुनि . सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

बालक : जो अरिहन को सुदेव, जैन साधुओ को सुगुरु और जैन धर्म को सुधर्म माने, वह सम्यग्दृष्टि है । क्योकि उसी की दृष्टि (अर्थात् श्रद्धा) सम्यक् (अर्थात् सच्ची) है ।

मुनि : मिथ्यादृष्टि किसे कहते है ?

बालक : जो अरिहत को सुदेव, जैन साधुओ को सुगुरु और जैन धर्म को सुधर्म न माने वह मिथ्यादृष्टि है क्योकि उसकी दृष्टि (अर्थात् श्रद्धा) मिथ्या(अर्थात् सच्ची नही) है ।

मुनि : मिश्रदृष्टि किसे कहते हैं ?

बालक : जो सभी देवो को सुदेव, सभी साधुओ को सुगुरु और सभी धर्मों को सुधर्म माने, वह मिश्रदृष्टि है क्योकि उसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा मिश्र मिलावट वाली है ।

मुनि : मोक्ष पाने के लिए कौनसी दृष्टि आवश्यक है ?

बालक : सम्यग्‌दृष्टि ।



साधु दर्शन

श्री उत्तमचन्द जी कुछ वर्षों मे मद्रास प्रात के किसी छोटे से गाव मे रह रहे थे । उनके दोनो पुत्र दयाचन्द्र और मगलचन्द्र का जन्म वही हुआ । वे बडे भी वही हुए । उन्हे कभी साधु-दर्शन नही हुए थे । इसलिए वे नही जानते थे कि साधुओ के दर्शन करते समय हमे क्या करना चाहिए और साधु उस समय हमारे लिए क्या करते है ?

एक बार श्री उत्तमचन्द जी अपने पुत्रो को साधु-दर्शन कराने के सिए और 'सम्यक्त्व सूत्र' दिलाने के लिए राजस्थान के अपने नगर मे लाये । वहां उस समय आचार्य श्री विराजते थे । दर्शन कराने के लिए जाते समय श्री उत्तामचद जी ने पुत्रो से कहा —देखो, साधु-दर्शन के समय 'अभिगमन' का पालन करना चाहिए ।

दया : 'अभिगमन' का अर्थ क्या है ?

पिता : दर्शन के लिए अरिहंतादि के सामने जाते समय पालने योग्य नियमों को 'अभिगमन' कहते हैं।

मंगल : 'अभिगमन' कितने है ?

पिता : पाच हैं। पहला है, 'सचित्त का त्याग।'

दया : इसका अर्थ क्या है ?

पिता : दर्शन के समय पास रही हुई छोडने योग्य सचित्त (जीव सहित) वस्तुओ को छोड़ना। जैसे दर्शन के समय पैरो मे मिट्टी आदि नही लगी रहनी चाहिए (पृथ्वीकाय का त्याग)। पानी या वर्षा की बूंदे नही लगी रहनी चाहिए। हाथ मे कच्चे पानी का लोटा आदि नही रहना चाहिए। (अप्काय का त्याग)। मुंह में धूम्रपान आदि नही चलना चाहिए, हाथ मे बेटरी आदि जलती हुई या मशाल आदि नही होनी चाहिए (तेजस्काय का त्याग)। पंखा झलते हुए नही रहना चाहिए (वायु काय का त्याग)। मुंह-मे पान चबाते हुए या कोई सचित्त वस्तु खाते हुए नही रहना चाहिए। केश आदि मे फूल आदि नही लगे रहने चाहिए। थैली मे शाक–सब्जी, धान्य या सचित्त मेवा आदि नही रहने चाहिए (वनस्पति का त्याग।

मंगल : यदि कांख मे बालक हो, तो ?

पिता उसे हटाना आवश्यक नही। सचित्त मिट्टी आदि साथ मे रहने से उनकी हिंसा होती है। मुनिराज के सामने हिंसापूर्वक जाना ठीक नही, इसलिए

उन्हें छोडना पडता है । बालक साथ में रहने से उसकी कोई हिसा नही होती । बालको को तो साथ रखना ही चाहिए । इससे वे भी वन्दना नमस्कार आदि करना सीखते हैं ।

दया : दूसरा अभिगमन क्या है ?

पिता : 'अचित्त का विवेक ।'

दया : इसका अर्थ क्या है ?

पिता : दर्शन के समय अचित्त (जीवरहित) वस्तुएं छोडना आवश्यक नही है । अत उन्हे न छोडते हुए, जिस प्रकार रखना चाहिए, उस प्रकार रखना । जैसे वस्त्र, अलंकार आदि पहने हुए रखे जा सकते हैं, पर मानसूचक जूते, मुकुट आदि पहने हुए नहीं रहना चाहिए । छत्र (छाता) लगा हुआ नहीं रहना चाहिये । चवर ढुलते हुए नही रहना चाहिए, साइकल आदि वाहनो पर बैठे हुए नहीं रहना चाहिए, उनसे उतर जाना चाहिए ।

दया . तीसरा अभिगमन क्या है ?

पिता : एक शाटिक उत्तरासग करना ।

दया : इसका अर्थ क्या है ?

पिता . 'मुंह पर बिना सिला एक [illegible] रखना ।' मुंह से बोलते हुए वायुकाय की हिंसा न हो, इसलिए इसे मुंह पर लगाया जाता है । [illegible] मुंह के चारो ओर तिरछा [illegible] लेना चाहिए, ताकि प्रदक्षिणा [illegible]

से पकडे रहना न पड़े तथा वह बार-बार नीचे न गिरे ।

दया · शेष दो अभिगमन कौनसे है ।

पिता : चौथा है अरिहत आदि दिखाई देते ही हाथ जोड-कर 'अञ्जलि बाधना' तथा पाचवा है मन को सब ओर से हटाकर जिनका दर्शन करना है, उन अरि-हन्तादि मे 'मन को जोडना ।'

पिता और दोनो पुत्र अभिगमन सहित आचार्यश्री की सेवा मे गये । वन्दना की । दोनो पुत्रो को आचार्यश्री ने सम्यक्त्व सूत्र दिया । पीछे मागलिक सुनाई । पिता अपने पुत्रो के साथ दुबारा आचार्यश्री को वन्दना कर लौट आये।

घर पर आकर दयाचन्द्र ने पिता से पूछा-पिताजी ! वन्दना करने पर साधुजी 'दया पालो' कहते है, उसका क्या अर्थ है ?

पिता : बेटा ! यह प्रश्न तुमने वही आचार्यश्री से क्यो नही पूछा ?

दया : मुझे सकोच हो रहा था ।

पिता · बेटा ! आचार्यश्री के सामने क्या सकोच ? वे तो तारक है । उन्होने सम्यक्त्व सूत्र के लिए तुम्हे कितना सुन्दर समझाया । ऐसे पुरुषो से प्रश्न पूछने मे कभी सकोच नही करना चाहिए ।
उन्हे प्रश्न पूछने मे वे अधिक प्रसन्न होते है । इसके अतिरिक्त वे जितना सुन्दर समाधान (उत्तर) दे सकते है, उतना हम लोग उत्तर नही दे सकते ।

अतः उनकी कृपा पाने के लिए तथा अपनी विशेष ज्ञानवृद्धि के लिए उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए हा, लो अब 'दया पालो' का अर्थ जैसा मुझे आता है, वैसा बताता हू ।

'दया का अर्थ है 'अहिसा' और 'पालो' का अर्थ है 'पालन करो' अहिसा हमारे सम्पूर्ण शास्त्रो का सार है । जब हम गुरुदेव को वन्दना करते हुए कहते है कि 'मैं आपकी पर्युपासना करता हूं, अर्थात् कुछ सुनना चाहता हू. तो वे हमे थोडे मे जो सम्पूर्ण शास्त्रो का सार अहिसा है, उसे पालन करने की भिक्षा देते है ।

दया . मुनिराज हमे 'दया पालो' ही क्यो कहते है ?

पिता जब थोडे शब्दों मे किसी को उपदेश देना हो, तो उसे सारभूत शिक्षा ही देनी चाहिए ।

मगल बहुत अच्छा पिताजी ! अब आप आचार्यश्री ने हमे अन्त मे जो पाठ सुनाया, उसका नाम बताइये और वह पाठ सिखाइये ।

पिता . मगल ! तुमने आचार्यश्री से सीखने मे सकोच किया, अच्छा नही किया । भविष्य मे कभी उनकी सेवा मे सकोच-लज्जा मत रखना । हा, उन्होने जो पाठ सुनाया, उसका नाम 'मागलिक' है । उसका मूल पाठ इस प्रकार है:—

चत्तारि मगल । १ अरिहंता मंगल २ सिद्धा मगल ३ साहू मगलं ४. केवलि पण्णतो धम्मो मगलं । चत्तारि लोगुत्तमा । १. अरिहता लोगुत्तमा २. सिद्धा

लोगुत्तमा ३. साहू लोगुत्तमा । केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।
चत्तारि सरण पवज्जामि । १. अरिहंते सरण पवज्जामि २- सिद्धे सरण पवज्जामि ३ साहू सरण पवज्जामि ४. केवलि पण्णत्तं धम्म सरण पवज्जामि ।

दया : उसके शब्दार्थ वताइए ।

पिता : शब्दार्थ इस प्रकार है—
चत्तारि = चार । मगलं = मगल है ।
१ अरिहता = सभी अरिहत । मगल = मंगल है ।
२. सिद्धा = सभी सिद्ध । मगल = मगल है ।
३ साहू = सभी (आचार्य, उपाध्याय) और साधु । मगला = मगल है । ४ केवलि = केवली (अरिहत)। पण्णतो = प्ररूपित (द्वारा कहा हुआ) । धम्मो = धर्म (जैन धर्म) । मगल = मगल है ।
क्याकि चत्तारि = चार । लोगुत्तमा = लोकोत्तम है । १ अरिहता = सभी अरिहत । लोगुत्तामा = लोकोत्तम है । २ सिद्धा = सभी सिद्ध । लोगुत्तमा = लोकोत्तम है । ३ साहू = (सभी आचार्य, उपाध्याय और) साधु । लोगुत्तमा = लोकोत्तम हैं ४ केवलि = केवली पण्णतो = प्ररूपित । धम्मो = धर्म । लोगुत्तमा = लोकोत्तम है ।
इसलिए चत्तारि = चार। सरण = शरण। पवज्जामि = ग्रहण करता हू ।
१. अरिहते सरण पवज्जामि = सभी अरिहतो की शरण लेता हू । २. सिद्धे सरण पवज्जामि = सभी

सिद्धो की शरण लेता हू । ३. साहू सरणं पवज्जामि — सभी (आचार्य उपाध्याय और) साधुअ की शरण लेता हू । ४ केवलि पण्णत्त धम्म सरणं पवज्जामि — केवलि प्ररूपित धर्म की शरण लेता हू ।

मंगल : इसका भावार्थ बताइये ।

पिता : भावार्थ इस प्रकार है —

१. अरिहत, २. सिद्ध, ३ साधु और ४ केवली प्ररूपित धर्म-ये चारो मगल हैं क्योकि सब पापों का नाश करते हैं । १. अरिहत लोकोत्तम अर्थात् सभी धर्म–प्रवर्तको से उत्तम हैं क्योकि वे १८. दोषरहित तीर्थंकर है । २. सिद्ध लोकोत्ताम अर्थात् सभी मत-मान्य सिद्धो से उत्ताम हैं क्योकि वे आठों कर्म क्षय करके मोक्ष में पधार गये हैं । ३ जैन साधु लोकोत्ताम अर्थात् सब साधुओ से उत्ताम है क्योकि वे ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप के धारक हैं । ४. केवलि प्ररूपित धर्म लोकोत्ताम अर्थात् सभी धर्मों से उत्ताम है क्योंकि वह सत्य और पूर्ण है । १. अरिहत, २. सिद्ध, ३. साधु और ४. केवलि प्ररूपित धर्म-ये चार मॅगल है तथा लोकोत्ताम है । अत. इनकी शरण लेनी चाहिए । इसलिए मैं उन की शरण लेता हू ।



करेमि भन्ते। प्रत्याख्यान का पाठ

करेमि भन्ते ! सामाइयं' सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तस्स भन्ते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थः—

प्रतिज्ञा

भन्ते ! हे=भगवान् ! सामाइय=सामायिक। करेमि= करता हू।

द्रव्य से

सावज्ज=सावद्य। जोगं=योग का। पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हू।

क्षेत्र से

सम्पूर्ण लोक प्रमाण प्रप्याख्यान करता हूं।

काल से

जाव=जब तक। नियम=इस नियम का। पज्जुवासामि= पालन करता हू' तब तक।

भाव से

दुविहं=दो प्रकार के कारण से। तिविहेणं=तीन प्रकार के योग से। न करेमि=सावद्य योग को नही करूंगा। न कारवेमि=न दूसरे से कराऊगा। मणसा=मन से। वयसा= वचन से। कायसा=काया से

पहले किये हुए पाप के विषय में

भन्ते = हे भगवान् ! तस्स = उसका (इस सामायिक करने के पहले किये हुए पाप का)। पडिक्कमामि = प्रतिक्रमण करता हूं। निन्दामि = निन्दा करता हूं। गरिहामि = गर्हा करता हूं। अप्पाणं = (अपनी पापी) आत्मा को। वोसिरामि = वोसिराता हूं।



करेमि भन्ते प्रश्नोत्तरी

प्र० : भगवान् किसे कहते हैं ?

उ० : साधारणतया अरिहंत तथा सिद्ध को भगवान् कहा जाता है परन्तु यहां आचार्य आदि गुरु को भी भगवान् कहा गया है।

प्र० : सामायिक किसे कहते हैं ?

उ० : जिसके द्वारा समभाव की प्राप्ति हो-ऐसी क्रिया को तथा समभाव की प्राप्ति को सामायिक कहते हैं।

प्र० : समभाव की प्राप्ति कैसे होती है ?

उ० : विषम भाव को छोड़ने से।

प्र० : विषम भाव किसे कहते हैं ?

उ० : सावद्य योग को।

प्र० : सावद्य योग किसे कहते है ?

उ० : अट्ठारह पाप तथा अट्ठारह पाप के व्यापार को।

प्र० . अट्ठारह पाप विषम भाव क्यो हैं ?

उ० : १. आत्मा के स्वभाव को समभाव कहते हैं तथा २. आत्मा का स्वभाव जिससे प्राप्त हो, उसे भी 'सम-भाव' कहते हैं । १. जिससे आत्मा का स्वभाव ढके तथा २ जिससे समभाव की प्राप्ति में विघ्न हो, उसे 'विषमभाव' कहते हैं ।

१. सभी आत्माए सिद्ध के समान हैं । इसलिए जो सिद्धो का स्वभाव है, वही आत्मा का स्वभाव है । परन्तु हिंसा आदि करना, क्रोधादि करना क्लेशादि करना कुदेवादि पर श्रद्धा करना आत्मा का स्वभाव नही है । इन अट्ठारह पापो ने आत्मा के स्वभाव को ढका है, इसलिए अट्ठारह पाप विषमभाव है । २ आत्मा के स्वभाव को पाने का अर्थात् सिद्ध बनने का उपाय है धर्म । पाप से धर्म में विघ्न पड़ता हैं । और धर्म मे विघ्न पड़ने पर मोक्ष-प्राप्ति मे विघ्न पडता है । इसलिए अट्ठारह पाप 'विपमभाव' हैं ।

प्र० : सामायिक मे अट्ठारह पाप (सावद्य योग) न करने का नियम कब तक पालना पडता है ?

उ० . जितने भी मुहूर्त और उसके उपरात का नियम लिया जाय, उतने समय तक नियम पालना पडता है । जैसे एक मुहूर्त, दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त और उसके उपरांत जब तक सामायिक न पार ले, तब तक नियम पालना पडता है ।

प्र० : मुहूर्त किसे कहते है ?

उ० : एक दिन रात के ३० वे भाग को अर्थात् ४८ मिनिट को मुहूर्त कहते है ।

प्र० : करण किसे कहते है ?

उ० : योगो की क्रिया को। १. करना २. कराना और ३. करते हुए का अनुमोदन करना अर्थात् भला जानना—ये तीन करण हैं ?

प्र० : योग किसे कहते है ?

उ० : करण के साधन को। १. मन, २. वचन और ३. काया—ये तीन 'योग' हैं ?

प्र० : क्या सामायिक का नियम जीवन भर तक के लिए और तीन करण, तीन योग से नही किया जा सकता है?

उ० : किया जा सकता है। इस प्रकार नियम लेने को दीक्षा कहा जाता है।

प्र० : दीक्षा मे और सामायिक मे क्या अन्तर है ?

उ० : अट्ठारह पाप इन नव प्रकारो से होता है :—

१. मन से करना, २. कराना और ३ अनुमोदन करना, ४. वचन से करना, ५ कराना और ६. अनुमोदन करना, ७. काया से करना, ८. कराना और ९. अनुमोदन करना। इन नव प्रकारो को 'नवकोटि' कहते हैं। दीक्षा मे १८ पापो का नवकोटि से प्रत्याख्यान करना पड़ता है और सामायिक मे छह कोटि या आठ कोटि से प्रत्याख्यान करना पड़ता है। छह कोटि मे तीसरी, छठी और नवमी—ये तीन कोटियां खुली रहती हैं तथा आठ कोटि मे मन से अनुमोदन की एक तीसरी कोटि खुली रहती है।

❀ दीक्षा जीवन भर के लिए ही होती है, जबकि सामायिक इच्छानुसार 'एक मुहूर्त उपरांत' आदि के लिए होती है।

प्र० : प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ० : अतिचार से या पाप से लौटना, पुनः धर्म मे आना।

प्र० : निन्दा किसे कहते है ?

उ० : १. अल्प रूप से निन्दा करना, २. अट्ठारह पापों की एक साथ निन्दा करना, ३. एक वार निन्दा करना, ४. आत्मसाक्षी से निन्दा करना।

प्र० : गर्हा किसे कहते हैं ?

उ० : १. विशेष रूप से निन्दा करना, २. एक-एक पाप की भिन्न-भिन्न निन्दा करना, ३. बारम्बार निन्दा करना, ४. देवा या गरु साक्षी से निन्दा करना।

प्र० : वोसिराने का अर्थ क्या है ?

उ० : छोडना, त्यागना।

प्र० : पापी आत्मा और धर्मी आत्मा—इस प्रकार क्या एक ही जीव की दो आत्माएं होती हैं ?

उ० : प्रत्येक की आत्मा एक ही होती है, परन्तु जब आत्मा पाप की भावना और पाप की क्रिया करती है, तब

❀दीक्षापाठ

करेमि भंते ! सामाइयं ॥१॥ सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ॥२॥ जावज्जीवाए॥३॥ तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतंपि अण्णं न समणुजाणामि ॥ ४ ॥ तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ ५ ॥

वह पापी आत्मा कहलाती है और जब आत्मा धर्म की भावना और धर्म की क्रिया करती है, तब वही आत्मा धर्मी आत्मा कहलाती है। पापी आत्मा को वोसिराने का अर्थ है—पाप-भावना और पाप-क्रिया छोड़ना।

प्र० : क्या घर, व्यापार, समाज, राज्य आदि सबका कार्य करते हुए सामायिक नही हो सकती ?

उ० . सामायिक मे केवल अनुमोदन की ही कोटि खुली रहती है, शेष रही कोटियो से हिंसा आदि सभी पापों को पूर्ण रूप से त्यागना पड़ता है।

घर, व्यापार, समाज आदि के काम करते हुए मोटी-मोटी हिंसा आदि पाप ही छूट पाते है, परन्तु सम्पूर्ण हिंसा आदि पाप नहीं छूट पाते। अत. उस समय सामायिक नही हो सकती।

हां, उस समय मोटी हिंसा आदि पापो से छूटने के लिए अहिंसा आदि पाच अणुव्रत तथा दिग्व्रत आदि तीन गुणव्रत धारण करने चाहिए। उनसे सामायिक की अपेक्षा कम, किन्तु खुले की अपेक्षा वहुत समभाव की प्राप्ति होती है।

प्र० : सामायिक के लिये प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) आवश्यक क्यो है ?

उ० : प्रत्येक व्रत को प्रत्याख्यानपूर्वक लेने से, १. किये जाने वाले व्रत का नाम स्पष्ट होता है। २. उसका स्वरूप समझ मे आता है। ३-४ व्रत के क्षेत्र और काल की मर्यादा निश्चित होती है। ५ व्रत के

पालन की कोटि (विधि) का ज्ञान होता है । ६. प्रत्याख्यान मे पूर्व के पापो की निन्दा, गर्हा आदि की जाती है, जिससे प्रत्याख्यान-पालन में दृढ़ता आती है इत्यादि, प्रत्याख्यानपूर्वक व्रत लेने मे कई लाभ हैं ।

प्र० : सामायिक करने मे आज्ञा आवश्यक क्यो है ?

उ० : प्रत्येक व्रतादि कार्य में आज्ञा लेने से १. अनुशासन का पालन होता है । २. आत्मा मे विनय गुण बढ़ता है । ३. गुरुदेव को हमारी पात्रता का ज्ञान होता है। ४. 'मैं सब कुछ कर सकता हू' — ऐसा अहंकार उत्पन्न नही होता । ५. गुरुदेव अवसर आदि के जानकार होते हैं, वे इस समय यह करना या अन्य कार्य करना—इसका विवेक करा सकते हैं इत्यादि आज्ञा लेने मे कई लाभ है ।

प्र० : गुरु महाराज के न होने पर सामायिक की आज्ञा किनसे ली जाय ?

उ० : यदि साधु-साध्वी का योग न हो तो जानकार या बडे श्रावक, श्राविका की आज्ञा लेनी चाहिये । किसी का भी योग न होने पर उत्तर दिशा, पूर्व दिशा या ईशान कोण मे वन्दना-विधि करके श्री सीमधर स्वामीजी से आज्ञा लेनी चाहिये ।

प्र० : क्या सामायिक लेने के लिए केवल यह प्रत्याख्यान का पाठ पढ़ना पड़ता है ?

उ० : नही । इसके अतिरिक्त और भी विधि करनी पड़ती है । वह अगले पाठों मे बताई जायगी ।

जब तक अन्य पाठ कठस्थ न हो और विधि की जान-
कारी न हो, तब तक केवल इस पाठ को पढ़कर ही
कई सामायिक व्रत ग्रहण करते हैं ।

प्र० : सामायिक पालने की विधि क्या है ?

उ० : वह भी अगले पाठों में बताई जायगी ।
जब तक उसके लिए आवश्यक पाठ कंठस्थ न हो
और विधि न जाने, तब तक ली हुई सामायिक तीन
नमस्कार मन्त्र गिनकर या केवल सामायिक पारने
का पाठ पढ़कर ही कई सामयिक व्रत पालते हैं ।

प्र० : सामायिक से क्या लाभ है ?

उ० : १ अट्ठारह पाप छूटते है । २. समभाव की प्राप्ति
होती है । ३. एक घड़ी साधु-सा जीवन बनता है ।
४. जैसे खुले समय में बड़े पशु, पक्षी, मनुष्य आदि
की दया और रक्षा की भावना होती है, वैसे ही
सामायिक में छोटे-से-छोटे जीवो की भी दया और
रक्षा करनी चाहिए—ऐसी भावना उत्पन्न होती है
और दृढ़ बनती है । ५. ससार के कार्य करते हुए
अरिहन्तों की वाणी सुनने-वाचने का अवसर कठिन
रहता है, सामायिक करने से अरिहंतो की वाणी
सुनने-वांचने का अवसर मिलता है । ६. सामायिक,
पोषध आदि व्रत में रहे हुए श्रावक-श्राविकाओं की
सेवा का लाभ मिलता है इत्यादि सामायिक से वहुत
से लाभ हैं ।



एयस्स नवमस्स : सामायिक पारने का पाठ

१. एयस्स नवमस्स सामाइय-वयस्स पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा त जहा-मण दुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ-अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

२ सामाइय सम्म काएणं न फासियं न पालियं न तीरिय न किट्टियं न सोहिय न आराहिय काणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

हिन्दी पाठ

३. दस मन के, दस वचन के और बारह काया के—इन सामायिक के बत्तीस दोषों में से किसी दोष का सेवन किया होतो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।'

४. सामायिक में स्त्री कथा, भक्त (भोजन) कथा, देश-कथा और राज-कथा–इन चारों में से कोई विकथा की हो तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।'

५. सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा इनमें से कोई सज्ञा-सेवन की हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।'

शब्दार्थ :

एयस्स—इस । नवमस्स—नव वे । सामाइय—सामायिक । वयस्स—व्रत के । पच—पाच । अइयारा—अतिचार । जाणियव्वा—जानने योग्य हैं । समायरियव्वा—आचरण करने योग । न—नही हैं ।

तंजहा—वे इस प्रकार है ।

मण—मन का । दुप्पणिहाणे—दुष्प्रणिधान । वय—वचन का । दुप्पणिहाणे—दुष्प्रणिधान । काय—काया का । दुप्पणिहाणे—दुष्प्रणिधान । सामाइयस्स—सामायिक की । सइ—स्मृति । अकरणया—न करना (न रखना) । सामाइयस्स—सामायिक को । अणवट्ठियस्स—अनवस्थित । करणया—करना ।

यदि ये अतिचार लगे हों तो

मि—मेरा । दुक्कड—दुष्कृत (पाप) । मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो ।

सम्मं—सम्यक् रूप मे । काएण—काया से । सामाइयं—सामायिक का । १. फासियं—(प्रारम्भ में प्रत्याख्यान का पाठ न पढ़ने से) स्पर्श न—न किया हो । २. पालियं—(मध्य मे सावद्ययोग न छोड़ने से) पालन । न—न किया हो । ३ तीरिय—(सामायिक को अन्त में पांच मिनिट अधिक न बढ़ाने से) तीर पर । न—न पहुचाई हो । ४. किट्टिय—(सामायिक समाप्त होने पर सामायिक के गुणों आदि का) कीर्त्तन । न—न किया हो । ५. सोहियं—(सामायिक में लगे अतिचारो की आलोचना प्रतिक्रमण करके सामायिक को) शुद्ध । न—न बनाई हो । आराहियं—(इस प्रकार सामायिक की) आराधना । न—न की हो । आणाए—अरिहंत भगवान् की आज्ञानुसार (सामायिक की)। अणुपालियं—अनुपालना । न—न । भवइ—हुई हो ।

तो तस्स—उस । मि—मेरा । दुक्कडं—दुष्कृत (पाप)। मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो । विकथा—सामायिक (संयम) को विराधना करने वाली कथा । १. स्त्रीकथा—स्त्री की,

(क) जाति की, (ख) कुल की, (ग) रूप की, (घ) वेश आदि की निन्दा या प्रशसा-रूप कथा करना । २. भक्त-कथा—(क) भोजन में इतना घी आदि लगा, (ख) इतने पकवान बने, (ग) इतनी वनस्पति लगी, (घ) इतने रुपये व्यय हुए आदि या निन्दा-प्रशसा रूप कथा करना । ३. देश-कथा—(क) अमुक देश मे उस लडके से लग्न किया जाता है, (ख) वैसा भोजन जिमाया जाता है, (ग) वैसे मकान बनाये जाते है, (घ) स्त्री-पुरुष वैसे वेश पहनते है–इत्यादि निन्दा या प्रशंसा–रूप कथा करना । ४. राजकथा—(क) अमुक राजा घूमने आदि के लिए राजधानी से ऐसे ठाठबाट से निकला, (ख) उसने विजय आदि करके इस प्रकार राजधानी मे प्रवेश किया, (ग) अमुक राजा के पास या राज्य मे इतनी सेना, शस्त्र आदि हैं, (घ) इतने धन-धान्य आदि के कोष, कोष्ठागार है—आदि निन्दा या प्रशसा-रूप कथा करना ।

सज्ञा—अभिलाषा । १. आहार-संज्ञा—सामायिक में भोजन आदि की अभिलाषा । २. भय-संज्ञा—भयंकर देव, हिंस्र पशु आदि से डरना । ३. मैथुन-संज्ञा—स्त्री आदि के काम-भोग की अभिलाषा, ४ परिग्रह-सज्ञा—धर्मोपकरण के अतिरिक्त सम्पति की अभिलाषा तथा धर्मोपकरण पर मूर्च्छा ।



"एयस्स नवमस्स" प्रश्नोत्तरी

प्र० : अतिचार किसे कहते हैं ?

उ० : व्रत के तीसरे दोष को। व्रत भंग करने का विचार होना १. 'अतिक्रम' है। साधनों को जुटा लेना २. 'व्यतिक्रम' है। व्रत को कुछ भंग करना ३. 'अति-चार' है तथा व्रत को सर्वथा भंग कर देना ४, 'अना-चार' है। ये व्रत के सब चार दोष है।

प्र० : 'दुष्प्रणिधान' किसे कहते हैं ?

उ० : मन, वचन या काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा अशुभ प्रवृत्ति मे एकाग्र बनाना 'दुष्प्रणि-धान' है।

प्र० : सुप्रणिधान किसे कहते हैं ?

उ० : मन वचन या काया के योग को शुभ प्रवृत्ति में लगाना तथा शुभ प्रवृत्ति में एकाग्र बनाना 'सुप्रणि-धान' है।

प्र० : सामायिक स्मृति न रखने का क्या भाव है ?

उ० : १. सामायिक का प्रत्याख्यान लेना ही भूल जाना। २. 'अभी मैं सामायिक में हूं'—यह भूल जाना। ३. 'मैंने सामायिक कब ली' ४. 'कितनी ली'—यह भूल जाना। ५. 'वर्ष में या महीने में इतनी सामा-यिक करूंगा'—इस प्रकार लिए हुए प्रत्याख्यान को भूल जाना इत्यादि।

प्र० : सामायिक को अनवस्थित करने का क्या भाव है ?

उ० : १. सामायिक विधि से न लेना ! २. विधि से न पारना । ३. सामायिक का काल पूरा होने से पहले पारना । ४. सामायिक से ऊबना, ५. सामायिक कब पूरी होगी—इस प्रकार विचार करना, बार-बार घडी की ओर देखते रहना । ६. वर्ष मे या महीने में जितनी सामायिकें करने प्रत्याख्यान किया हो, उतनी सामायिके न करना ७. सामायिक जिस समय प्रातः, संध्या, पक्षी (पक्खी) आदि को करने का नियम लिया हो, उस समय न करना इत्यादि ।

प्र० : अनाचार के समान अतिक्रमादि तीन का 'मिच्छा मि दुक्कड' क्यो नही ?

उ० : अतिक्रम और व्यतिक्रम से अतिचार बड़ा है, अतः अतिचार के 'मिच्छामि दुक्कडं' से अतिक्रम व्यतिक्रम का भी 'मिच्छा मि दुक्कडं' समझ लेना चाहिये । अनाचार से सामायिक पूरी भंग हो जाती है, इस-लिए अनाचार के लिए तो फिर से सामायिक करनी पड़ती है ।

प्र० : सामायिक के गुणादि का कीर्त्तन कैसे करना चाहिए?

उ० : १. सामायिक के लाभ पहले बताए जा चुके है । उनका कीर्त्तन करना । २. सामायिक को बताने वाले अरिहंत देव तथा गुरु का कीर्त्तन करना—जैसे 'धन्य हैं, अरि-हन्तो को तथा गुरुदेवो को, जिन्होनें सामायिक जैसी महान् फलवाली क्रिया बतलाई ।' ३. सामायिक करके अपने को धन्य मानना—जैसे 'आज का दिन धन्य है कि मैं सामायिक कर सका ।' ४. सामायिक

की भावना करना—जैसे 'ऐसी सामायिक मेरे प्रतिदिन होती रहे ।' इत्यादि ।

प्र० : विराधना किसे कहते हैं ?

उ० : स्पर्श आदि पाच बोल में से एक भी बोल व्रत की साधना मे कम होना ।

प्र० : आराधना किसे कहते हैं ?

उ० : स्पर्श आदि पांच बोल सहित व्रत की साधना करना ।



सामायिक के उपकरण

विजयकुमार एक छोटे गांव का विद्यार्थी था । वह शिक्षण के लिए बड़े नगर मे आया । वहां उसने लौकिक शिक्षा के साथ जैनशाला में धार्मिक शिक्षा भी पाई ।

जब वह घर लौटा तो अपने छोटे भाई जयन्त के लिए दूसरी-दूसरी वस्तुओ के साथ सामायिक के उपकरण भी खरीद कर ले गया :

उस छोटे गांव मे साधुओ का पधारना नही हो पाता था । न वहां कोई जैनशाला थी । जैन के नाम पर उस गाव में अकेले उसी का घर था । धर्मशीला माता का स्वर्गवास हो गया था । पिता खेती-बाड़ी करते थे । उनकी धर्म में कोई रुचि न थी, इसलिए जयन्त को कोई धार्मिक संस्कार नही मिल सके थे ।

विजय की इच्छा थी—मैं जयन्त को भी धार्मिक बनाऊं, क्योंकि धर्म बहुत लाभकारी है। यदि मैं उसको भी धार्मिक बना सका, तो वह मेरे लिये इस छोटे गांव में धर्म का साथी बन जायगा।

घर पहुंचने पर छोटे भाई जयन्त ने विजय का बहुत स्वागत किया। भोजन-पान आदि हो जाने पर विजय ने जयन्त को अन्य सब वस्तुएं देने के साथ साथ सामायिक के उपकरण भी दिये।

जयन्त : ये सब क्या है ?

विजय : धर्म के उपकरण है।

जयन्त : उपकरण किसे कहते है ?

विजय : धर्म की करणी में सहायक साधनों को।

जयन्त : (आसन को देखकर) भैय्या ! यह कपड़े का जाडा टुकड़ा क्या है ? यह किस काम आता है ?

विजय : इसका नाम 'आसन' है। यह धर्म-क्रिया करते समय बैठने के काम मे आता है। यह लगभग हाथ भर लम्बा-चौड़ा है, अतः इस पर सुविधा से बैठ सकते हैं। सामायिक नामक जो धर्म-क्रिया है, उसमें पैरों को लम्बा नही किया जाता, अतः यह इतना छोटा है।

जयन्त : क्या सामायिक गद्दी, गद्देदार कुर्सी, पलग आदि पर बैठकर नही की जा सकती ?

विजय : नहीं। क्योकि उसमे १. आराम बढ़ता है २. आलस्य बढ़ता है, ३. अहकार बढ़ता है। सामायिक

मे १. परीषह, (कष्ट) सहना चाहिए, २. आलस्य नही करना चाहिए, ३. अहंकार दूर करना चाहिये। एक बात यह भी है उनमे बिनौले आदि हो सकते हैं, वे जीव सहित होते हैं। उन पर बैठने पर ४. उनके जीवो की हिंसा होती है।

साथ ही यदि उनमे कोई कीड़ी आदि छोटे जीव घुस जाये, तो उनकी रक्षा के लिए उन्हे वहां देखना और निकालना कठिन हो जाता है।

जयन्त : (धोती देखकर) भैय्या ! तुम तो पेण्ट, चड्डी पायजामा आदि पहनने वाले हो, इसलिए इसकी क्या आवश्यकता है ?

विजय सामायिक मे पेण्ट, चड्डी, पायजामा, कुरता, बनियान आदि धर्म-अयोग्य वेश नही पहने जाते। सामायिक मे धर्म के योग्य वेश धोती, दुपट्टा आदि पहने या ओढे जाते हैं। इसलिए धोती के साथ यह दुपट्टा भी है।

जयन्त : सामायिक मे धर्म-अयोग्य वेश क्यो नही पहना जाता ? धर्म-योग्य वेश क्यों पहना जाता है ?

विजय : १. धर्म अयोग्य वेश मे कोई कीड़ी आदि छोटे जीव घुस जाये, तो उनकी रक्षा के लिए उन्हें देखना और निकालना कठिन हो जाता है।

२ धर्म-अयोग्य वेश पलटकर धर्म-योग्य वेश पहनने से सांसारिक भावनाओ के परिवर्तन मे सहायता मिलती है जैसे—सैनिक वेश पहनने से कायरता की भावना मिटकर वीरता की भावना जगती है।

३. धर्म—अयोग्य सासारिक वेश पलटने मे यह लाभ भी है कि दूसरे लोग समझ जाते हैं कि 'यह धर्म क्रिया कर रहा है।' इससे वे हमे कोई सासारिक बात नही कहते या हमारे सामने कोई सांसारिक बात नही करते।

जयन्त : (मुख-वस्त्रिका देखकर) यह क्या है ? क्या यह टुकडा पसीना पोछने के लिए है ? परन्तु यह कुछ जाड़ा है, पसीना पौछने के लिए पतला कपडा अच्छा रहता है। यह कपडा चौकोर भी नही और इस कपड़े के ऊपर डोरी क्यो है ?

विजय : इस कपडे को 'मुख-वस्त्रिका' कहते हैं। यह अपने अपने हाथ से सोलह अंगुल चौड़ा और इक्कीस अंगुल लम्बा होता है। पहले इसकी चौड़ाई को घडी करके आधी की जाती है। पीछे लम्बाई को दो बार घड़ी करके पाव की जाती है। तब यह कपडा आठ अंगुल चौड़ा और लगभग पाच अंगुल लम्बा रह जाता है और आठ पट वाला बन जाता है।

चार पट ऊपर और चार पट नीचे करके इसके बीच यह डोरी डाली जाती है और फिर (मुंह) पर बाध कर दिखाते हुए) इस प्रकार मुंह पर बांधी जाती है।

जयन्त : यह ऐसी बनाकर मुंह पर क्यो बांधी जाती है ?

विजय : १. हमारे मुंह से बोलते समय जो वेगवान् वायु निकलने लगती है, उससे बाहरी वायु के जीव

टकराकर मर जाते है । वायु भी जीवरूप है। इसे आठ पट करके मुंह पर बांधने पर मुंह से जो वायु वेग से निकलती है, वह इस मुख-वस्त्रिका से टकरा कर इधर-उधर फैल जाती है, अतः इससे वायु के जीवो की हिंसा रुकती है। इस प्रकार यह मुख-वस्त्रिका वायुकाय के जीवो की रक्षा के लिये ऐसी बनाकर मुंह पर बांधी जाती है। २. मुख-वस्त्रिका मुह पर बाधी होने से त्रस जीव मुंह मे प्रवेश करके मरते नही तथा ३. मुंह का थूक दूसरे पर या पुस्तको पर गिरता नही—इसलिये भी यह मुंह पर बाधी जाती है। ४. यह मुख-वस्त्रिका जैन धर्म का ध्वज (झण्डा) है—इसलिए भी यह शरीर के मुख्य भाग मुख पर बांधी जाती है।

जयन्त : मख-वस्त्रिका पतले कपड़े की क्यो नही बनाई जाती है ?

विजय : मुख वस्त्रिका पतले कपड़े की बनाने पर १. उससे वायु का वेग ठीक रुक नही पाता। २. कभी-कभी वह मुंह मे आने लगती है, जिससे बोलने में कठिनता हो जाती है। ३. पतले कपडे की मुंहपत्ति नीचे के दोनो कोनो से बहुत मुड जाती है—इसलिये भी मुख-वस्त्रिका पतले कपडे की नही बनाई जाती।

जयन्त : मुख-वस्त्रिका जाडे कपडे की क्यो नही बनाई जाती है ?

विजय : जाडे कपडे की मुख-वस्त्रिका से बाहर शब्द स्पष्ट और तेज निकल नही पाता, इसलिये।

जयन्त : यदि जाडे कपडे की चार पट की या पतले की सोलह पट की मुख-वस्त्रिका बना ली जाय, तो क्या आपत्ति है ?

विजय : इससे व्यवस्था और एकता भग हो जाती है।

जयन्त यदि मुख-वस्त्रिका को हाथ में पकड कर मुह के सामने रख ली जाय, तो क्या आपत्ति है ? उसमे डोरा डालना आवश्यक क्यों है ?

विजय : १. भगवान की स्तुति आदि कई बातें हाथ जोड कर की जाती हैं और उस समय अधिकतर हाथ मुंह से दूर रहते हैं। यदि हाथ मे मुख-वस्त्रिका रखी जाय, तो उस समय मुह पर मुहपत्ति नही रह सकती। २ दो-तीन घंटे तक लगा कर सामायिक मे बोलना पड़े, तो हाथ के सहारे मुह पर मुंहपत्ति रखना कठिन हो जाता है। ३ मैं अभी नही बोल रहा हू—'यह सोचकर यदि हाथ की मुंहपत्ति इधर-उधर रखने मे आ जाय, इधर इतने मे यदि खासी, जंभाई आदि आ जाय और ढूढने से समय पर मुंहपत्ति न मिले, तो अयतना (जीव हिंसा) होती है। ४ हाथ मे मुंहपत्ति रखने वाला, जब-जब आवश्यक हो तब-तब मुख-वस्त्रिका को मुंह पर लगा लेने का ध्यान रख ले—यह सम्भव नही, क्योकि सामान्यतया मनुष्यो मे इतना उपयोग (विवेक) नही रहता। इसलिए मुख-

वस्त्रिका मे डोरा डाल कर उसे मुंह पर बाधना आवश्यक है।

जयन्त : अच्छा और यह छोटे झाड सा क्या है तथा यह किस काम में आता है ?

विजय इसे 'पूंजनी' कहते हैं। १ आसन बिछाने से पहले इसके द्वारा भूमि को पूंज ली जाती है, जिससे कोई जीव आसन के नीचे दब कर मर न जाय। २. कोई कीड़ी-मकौडी आदि जन्तु आसन पर चढ जाय तो इससे उसे धीरे-से दूर कर दिया जाता है। ३. यदि कोई डास-मच्छर हमे काटे, तो हाथ से खजलाने से वह कभी-कभी मर तक जाता है, इससे पहले उसे हटाकर फिर खुजलाने से उसकी हिंसा नही होती। ४. रात को कही जाना-आना पडे तो पहले इससे भूमि पूंज कर मार्ग-शुद्ध किया जाता है, जिससे जीव-हिंसा न हो इत्यादि। यह पूजनी कई कामो मे आती है।

जयन्त : यह ऊन से क्यो बनाई जाती है ?

विजय : क्योकि यह १ कोमल रहे। कठिन झाडू से छोटे कोमल जीव मर जाते हैं, इसलिये पूजनी कोमल होना आवश्यक है। २. ऊन से बनवाने का दूसरा लक्ष्य यह है कि शीघ्र मैली नही होती।

जयन्त इसमें यह डडी क्यो लगी है ?

विजय : सुविधापूर्वक पकड कर पूजने के लिये। इसे बहुत सावधानी से रखनी चाहिये। तेजी से गिरने पर इससे भी जीवहिसा हो सकती है।

जयन्त : अच्छा, इस माला का नाम क्या है, यह किस काम में आती है ?

विजय : इस माला का नाम 'नमस्कारावली' (नवकार–वाली) है, क्योंकि अधिकतर इससे नमस्कार नामक मन्त्र गिना जाता है। तीर्थंकरो के नाम का जप करते समय भी यह काम आती है। और भी जप या अन्य स्मरण के समय यह सख्या जानने के काम मे आती है।

जयन्त : इसमे कितनी मणियां होती हैं ?

विजय : इसमे १०८ मणियां होती हैं। एक–एक मणि को एक-एक नमस्कार-मन्त्र गिनकर खिसकाया जाता है, जिससे १०८ नमस्कार मन्त्र की एक माला पूरी हो जाती है।

जयन्त : इसमे जो फुन्दा लगा है, उसे क्या कहते हैं ?

विजय : उसे 'मेरु' कहते हैं। उसकी मणि मे गिनती नही है। यहा पहुचने पर माला समाप्त हो जाती है।

जयन्त . यह माला सादी और अल्प मूल्य वाली क्यो है ?

विजय . क्योकि मन धर्म मे लगा रहे इसके रूप–सग मे मन न चला जावे।

जयन्त : (एक छोटी-सी पुस्तक उठाकर देखते हुए) यह पुस्तक किसकी है ? (कुछ पन्ने उलट कर) इसमें सब अ क ही अ क क्यो है तथा २–५–३–१–४ यो उल्टे-मुल्टे अंक क्यो हैं ?

विजय : यह पुस्तक आनुपूर्वी की है। इसमें छपे हुए अङ्को के इस क्रम को आनुपूर्वी कहते है। इसमे जहां जो

अङ्क हैं, वहां नमस्कार मन्त्र के उस अंङ्क वाले पद का उच्चारण किया जाता है। जैसे जहा, एक है, वहां 'णमो अरिहताण' का उच्चारण किया जाता हैं। इसमे सब २० कोष्ठक (कोठे) हैं। प्रत्येक कोष्ठक मे १ से ५ तक अङ्क ६ बार दिये हैं। इसलिये आनुपूर्वी को गिनने से नमस्कार मन्त्र का १२० बार स्मरण हो जाता है।

इसमें उल्टे-सुल्टे अङ्क इसलिये है कि मन स्थिर रह सके क्योकि मन स्थिर रहे बिना कहां क्या बोलना—इसका घ्यान नही रह सकता।

जयन्त : मन स्थिर करने की क्या आवश्यकता है ?

विजय : स्थिर मन से किया हुआ जप आदि काम अधिक फलदायी होता है।

जयन्त और यह पुस्तक किसकी है? इसमे यह सब क्या लिखा है ?

विजय : यह धार्मिक पुस्तक हे। १ इसमें तत्त्व--ज्ञान की कई बाते हैं, जिससे ज्ञान बढता है २. कई तीर्थंकर आदि महापुरूषों की कहानियां हैं, जिससे अनुकरण की भावना जगती है। ३ कई अच्छी-अच्छी स्तुतिया हैं, जिससे मन पवित्र बनता है और ४. कई सुन्दर-सुन्दर उपदेश हैं, जिससे आत्मा सुधरती है।

जयन्त : ये सब धार्मिक उपकरण तुम कहा से लाये ?

विजय : मैं जिस नगर मैं पढ़ता हूं, वहां की जैनशाला से।

जयन्त : ये सब क्यो लाये ?

विजय इसलिये कि कि तुम भी धर्म करो और धार्मिक बन कर मेरे सच्चे धर्म--भाई बनो। बोलो धर्म करोगे? मेरे सच्चे भाई बनोगे ?

जयन्त : अवश्य !



विवेक

आज जैनशाला मे नये शिक्षक श्रावक जी की नियुक्ति हुई थी। वे समय से पहले जैनशाला मे पहुचे पर शाला मे कोई छात्र उपस्थित न था।

जैनशाला आरम्भ होने के समय से लगभग १५ मिनिट से भी पीछे निर्दोषचन्द्र, तटस्थकुमार और उपकार नाथ जैनशाला में आते दिखाई दिये। वे तोनो ही जैनशाला के नामाङ्कित छात्र थे।

तीनो मुह मे कुछ खाते चले आ रहे थे। निर्दोष--चन्द्र सबसे आगे था। उसकी आखें कभी ऊपर और कभी तिरछी देख रही थी। अचानक उसे पत्थर की ठोकर लगी और वह मुह के बल नीचे गिर पड़ा।

तटस्थकुमार और उपरकारनाथ दोनो एक-दूसरे के गले मे हाथ डाले पीछे चल रहे थे। उपकारनाथ ने निर्दोष चन्द्र को नीचे गिरते देखा, तो बहुत हसा। उसने कहा---धन्यवाद निर्दोष, बड़ा अच्छा, उपकार का काम किया।

बेचारी कीड़ियां इस योनि मे बहुत दु.ख पा रही थीं, तुम ने उन्हे इस दु खभरी योनि से छुडा कर उन पर बहुत ही उपकार किया है ।

तटस्थकुमार ने उपकारनाथ से कहा— उपकार ! देखो, कर्म कितने न्यायवान हैं ! कल उसने तुम्हे गिराया, तो आज वह ठोकर खाकर स्वयं गिर गया । कर्म न्याय करने में देर करते हैं, अन्धेर नही ।

निर्दोषचन्द्र किसी तरह संभला । उसने अपने मुह की धूल झाड़ी, कपड़े ठीक किए और शाला में प्रवेश किया।

अध्यापकजी देख रहे थे कि ये पीछे आने वाले छात्र अपने साथी की इस दशा को देख कर क्या करते हैं ? परन्तु उन्होने जो कुछ देखा-सुना, उससे उन्हें बहुत दु ख हुआ । वे निर्दोषचन्द्र के पास पहुचे । जहा उसे लगी थी, उसे दबाया । जहां-कही चोट आई थी, उस पर औषधि की ।

पीछे उससे प्रेमपूर्वक मधुर शब्दो मे कहा—देखो, सदा नीचे देख कर चला करो । १. इससे कीडी आदि जीवों की रक्षा होती है, २ हम भी ठोकर से बचते हैं और ३. कोई वस्तु पडी हुई हो तो वह मिल भी जाती है ।

निर्दोष · (अपने को निर्दोष बताते हुए) श्रीमान् जी ! में तो अपने पाठ को दुहराता चला आ रहा था । मेरा ध्यान इधर-उधर नही था । परन्तु अन्य छात्र बड़े अविवेकी हैं । उन्होने पत्थर को रास्ते में ही लाकर रख दिया । फिर ठोकर न लगे तो और क्या हो ?

'उपकारनाथ और तटस्थकुमार दोनो आकर भूमि पर ही प्रवेश-द्वार पर बैठ गये टांग पर टांग चढा ली और शाला के बाहर को ओर देखने लगे ।

अध्यापक जी ने उन दोनो की ओर देखते हुए कहा । देखो, छात्र-अवस्था मे खाते हुए परस्पर गले मे हाथ डाले चलना नही चाहिए । फिर जैनशाला मे आते समय तक इस प्रकार की प्रवृत्ति बहुत अनुचित है ।

जब तुम्हारा साथी ठोकर खाकर गिर पड़ा, तब तुम केवल देखते रहे और बाते छाटते रहे—पर इसकी कोई सेवा न की । करुणा के प्रसग पर सदा ही अनुकम्पा--भाव सहित सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिए ।

तुम तीनों जैनशाला मे कितनी देरी से पहुचे हो ? यहा समय पर पहुचना चाहिए । और अब इस प्रकार अभिमान के आसन से बैठ गये हो । अपने से बडो के सामने विनय के आसन से बैठना चाहिए तथा तुम्हारा अपना आसन कहा है ? तुम्हारा बैठने का स्थान कौनसा है ? सदा आसन लगाकर अपने स्थान पर बैठना चाहिए । हा अब सामायिक लो और अध्ययन आरम्भ करो ।

उपकार : आपने शिक्षा देकर हम पर बहुत उपकार किया है, पर श्रीमान्जी ! आप आज ही पधारे हैं, अतः आज तो सामायिक से छुट्टी मिलनी चाहिए । फिर कभी आप कहेंगे तो हम आपको दो--चार सामा--यिक अधिक कर देगे ।

तटस्थ : (टोकते हुए कडे स्वर में) उपकार ! तुम्हें इस प्रकार नये अध्यापक जी को उत्तर नहीं देना चाहिए। यह अनुशासन का भग है। परन्तु अब पाठशाला का इतना समय नही रहा कि सामायिक आ सके, अत अध्यापक जी का सामायिक के लिए कहना भी अविवेक है।

अध्या० : तटस्थकुमार ! यदि कभी सामायिक जितना समय नही रह जाता, तो थोडे समय का 'सवर' (अट्ठारह पाप का एक कारण एक योग से त्याग) किया जा सकता है। समय को जितना भी हो, सार्थक बनाना चाहिए।

फिर आज लोक (व्यावहारिक) पाठशाला की छुट्टी है। यहा का समय पूरा होने पर जाना कहा है ? आज एक के स्थान पर तीन सामायिक कर सकते हो। आज विलम्ब से पहुचे, इसके पश्चात्ताप के रूप मे भी तुम्हें छुट्टी के दिन एक सामायिक विशेष करनो चाहिए। खेलो से भी आत्मा के कल्याण के लिए अधिक रुचि रखनी चाहिए। तुम्हे यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि बडो की भूल हो तो भी उसे अविनय के साथ मत कहो किन्तु उन्हें विनय से निवेदन करो। यह भी हो सकता है कि उनकी उचित शिक्षा तुम्हे तुम्हारी अल्प बुद्धि के कारण समझ मे न आवे। अत: बडो की बात अविवेकपूर्ण है—ऐसा शीघ्र निर्णय करना ठीक नही है।

निर्दोषचन्द्र ने (यह सुन कर) शीघ्रता से कुरता उतारा । आसन खोला । ज्यो-ज्यो मुह पर मुंहपत्ति वांधी और शरीर पर दुपट्टा डालते हुए कहा—श्रीमान्जी ! देखिये, मुझे चोट आ गई है, फिर भी मैंने विना आपके कहे ही सामायिक ले ली है । मैं कितना विवेकशील हूं ?

आ० : धन्यवाद ! पर अपनी मुहपत्ति देखो— कितनी टेढी-मेढी है और उसे उल्टी ही वांध ली है । इसका डोरा भी ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर वाघ लिया है । मुहपत्ति ठीक करो ।

और देखो, तुम्हारे नाक में श्लेषम आ रहा है, वह इस पर भी कुछ लग गया दिखता है—उसे शुद्ध करो । श्लेषम मे समूर्च्छिम नामक जीवों की उत्पत्ति हो जाती है ।

हां, नाक शुद्ध करते समय भूमि का ध्यान रखना । कही वहा जीव न हों, जो श्लेषम मे दवकर मर जायें । श्लेषम वोसिराने के साथ उस पर धूल, राख आदि डाल देनी चाहिये, ताकि उस पर बैठने पर मक्खी आदि उसी मे चिपक कर मर न जाय ।

(निर्दोषचन्द्र नाक शुद्ध करके आ गया । उसके पश्चात्) तुमने कुरता खोलकर दुपट्टा तो पहन लिया, पर पायजामा अव तक पहने हुए हो । सामायिक में धोती पहननी चाहिए । और वह भी लांग न लगाते हुए पहननी चाहिए ।
हा, एक वात और है । तुम्हें सामायिक की विधि

ग्रादि ध्यान में होते हुए भी बिना विधि सामा-यिक क्यो ली ? पुनः विधि करो और फिर सामायिक लो ।

निर्दोष : श्रीमान्जी ! यह सब भूल उपकारनाथ की है । ग्राप तो नये ग्राये हैं । पुराने ग्रध्यापक जी ने उपकारनाथ से कहा था कि मुझे सामायिक की विधि ग्रौर उपकरणो के सम्बन्ध मे बतावें, पर उसने ग्राप जैसे नही बताया । मैंने जो मुंहपत्ति वांधी, वह इसी ने इस प्रकार बाधनी सिखाई । इसने धोती को पहनना अनावश्यक बताया ग्रौर केवल प्रतिज्ञा-सूत्र से ही सामायिक प्रत्याख्यान का काम निकल सकता है—ऐसा कहा । मैं इसमें पूरा निर्दोप हू ।

उपकारनाथ ने सामायिक का वेश पहनकर सामा--यिक की विधि के साथ प्रत्याख्यान का पाठ पूर्ण करते हुए कहा ।

श्रीमान्जी ! यह निर्दोष झूठ बोलता है । देखिये, मेरी मुख-वस्त्रिका कितनी अधिक धुली हुई, कितनी सुन्दर जमी हुई और कितनी कुशलता से मुह पर पहनी हुई है । क्या मैं इसे ऐसी मुंहपत्ति वाधना सिखाता ?

मैंने सांसारिक वेश पूरा त्याग दिया है ग्रौर पूरा सामायिक वेश पहन लिया है तथा विधि से सामायिक ग्रहण की है । निर्दोष को चाहिए कि वह मुझसे इन सब बातो की ग्रमूल्य शिक्षा ग्रहण करे । मैं सबके लिए स्वय को ग्रादर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने की महान् सेवा बजाता

हूं परन्तु यह मेरा उपकार ही नहीं मानता । कृतघ्न कहीं का !

तटस्थकुमार भी अब तक पूरे तैयार हो चुके थे । उन्होंने कहा ।

उपकारनाथ अवश्य ही ऐसे हैं, जिनसे शिक्षा ली जा सकती है । परन्तु इनकी पूजनी और माला की क्या अवस्था है ? ये केवल अपनी मुख--वस्त्रिका सजाने का काम करते हैं । पूजनी और माला के प्रति ध्यान नहीं देते ।

इनकी डण्डी पर न तो फलिया ठीक लिपटी हुई है, न उन्हें डोरे से ठीक बांधा गया है । फलिया ऊंची-नीची दीख रही हैं और डोरा लटक रहा है ।

माला का डोरा चार बार तोड दिया । जहां--तहां उसने गाठें लगा दी है और एक स्थान पर तो अब तक गांठ भी नही लगी है । मणिया कई बार बिखर चुकी है । अब इनकी माला मे ८० मणिया भी नही रही होगी ।

अध्या० : उपकारनाथ ! तटस्थकुमार जो कुछ कह रहा है, यदि वह सत्य है, तो वैसा नही होना चाहिये । उपकरण धर्म मे सहायक हैं, उनकी उपेक्षा अच्छी नही । उनको सदा व्यवस्थित और सम्भाल कर रखना चाहिये । और हा, देखो, उपकारनाथ ! यदि कोई असत्य बोलता भी हो, तो उसके प्रति व्यग करना, क्रोध करना या कलहभरी वाणी कहना ठीक नही । अच्छे विद्यार्थियों को शान्त रहना चाहिये । प्रत्येक विद्यार्थी को अपना मित्र समझते

हुए उसके साथ 'मित्रता बने और मित्रता बढे' ऐसी वाणी बोलनी चाहिए। पुत्र की कलहभरी वाणी मां को भी अच्छी नही लगती, तो वह दूसरों को कैसे अच्छी लग सकती है ? सदा ही मिश्री-सी मधुर वाणी वोलनी चाहिये। (तटस्थ–कुमार की ओर देखते हुए) और देखो, तटस्थ–कुमार ! किसी की चुगली खाना भी एक पाप है। इससे आपस मे वैर--विरोध बढता है। अपने समान साथी की सबके सामने निन्दा करना और भी ठीक नही है। सबसे अच्छा यह है कि उसे एकात मे चेता दो। यदि इससे वह न सुधरे, तो एकांत में बड़ों से कह दो।

(निर्दोषकुमार की ओर देख कर) अच्छा, अब निर्दोष ! अपनी पुस्तक लाओ। अब तक तुम्हारे कितने पाठ हुए हैं ?

निर्दोष. (श्रावकजी को पुस्तक देते हुए) तब तक चौदह पाठ हुए है।

श्रा० · (पुस्तक देखकर) निर्दोष ! देखो, पुस्तक की क्या दशा हो गई है ! अब तक पुस्तक आधी भी नही हो पाई कि पन्ने फट गये हैं, इसके चारो ओर कितनी धूल लगी है। इसमे कई स्थानों पर तैल आदि के कलङ्क (धब्बे) भी लग गये हैं।

निर्दोष : श्रीमान्जी ? पुस्तक की ऐसी दशा वनने मे मेरा कोई दोष नही है। एक वार मेरा छोटा भाई रो रहा था। मैंने उसको यह पुस्तक खेलने को दी, परन्तु उसने इसके पन्ने फाड़ डाले। एक बार मैंने

यह पुस्तक घर के द्वार पर रखी, सेवक ने वहीं सारे घर का कचरा इकट्ठा कर दिया। एक बार यही जैनशाला में हमे मिठाई खिलाई गई, उसके कण इस पुस्तक मे चिपक गये। बताइए, इसमे मैं दोषी हूं या मेरा छोटा भाई, सेवक और हमे मिठाई खिलाने वाले दोषी हैं ?

अध्या० . देखो निर्दोष ! अपना दोष होते हुए भी दोष न स्वीकारने से सुधार नही होता। बच्चे को खेलने के लिए खिलौना दिया जाता है, पुस्तक कोई खिलौना नही है। बच्चो को पुस्तक देने से पुस्तक फटने का डर रहता है. इसलिए उन्हे पुस्तक नही देनी चाहिए। तुमने घर के द्वार पर पुस्तक रखने की असावधानी क्यो की ? वहा तो कचरा इकट्ठा किया ही जाता है। सेवक को भले ही ध्यान न रहा हो, पर तुम्हारा कर्त्तव्य था कि तुम अपनी पुस्तक को कही ऊंचे और सुरक्षित स्थान पर रखते। मिठाई देने वाले तुम्हारा उत्साह बढाने के लिए और तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए मिठाई देते हैं, परन्तु तुम उलटे उन्ह दोषी बना रह हो ! मिठाई आदि खाते समय अपनी पुस्तक को एक ओर रख कर फिर मिठाई आदि को शान्ति से और धीरे-धीरे खानी चाहिए जिससे पुस्तक न बिगड़े।

(उपकारनाथ की ओर मुंह करके) अच्छा, उपकारनाथ ! तुम अपनी पुस्तक बताओ।

उपकार : (अपनी पुस्तक श्रावकजी को देते हुए) देखिये,

श्रीमान्! मेरी पुस्तक नई-सी है। मैंने किसी दूसरे की पुस्तक का अच्छा जाडा-सा पुट्ठा उतार कर इस पर चढा दिया है। मैं इसकी प्राणो से भी अधिक रक्षा करता हूं। एक दिन भी इसे खोलकर नही पढता। इसे अपने घर के आले में कपड़े मे लपेट कर रखा करता हू। प्राय: इसे जैनशाला में भी नही लाता। आज आप नये अध्यापकजी आये हैं, अत: प्रदर्शन के लिये ले आया हूं।

श्रा० : उपकारनाथ! तुम्हें जैनशाला से पुस्तक इसलिए नही दी जाती कि तुम उसे आले मे ले जाकर रख दो। पुस्तक पढने के लिए है। उनको पढने के काम मे लाना चाहिये।

'मेरी पुस्तक अच्छी रहे, इसलिए दूसरो की पुस्तको से काम चला लू। यदि दूसरो की पुस्तक बिगड़े, तो इससे मुझे क्या?' ऐसी भावना अच्छी नही है। इस भावना से आपस मे मैत्री और एकता नही बढती।

बहुत बार दूसरो की पुस्तको से काम चलाने से या तो दूसरो के अध्ययन मे बाधा पडती है या अपने स्वय के अध्ययन मे बाधा पडती है। अत: अपनी पुस्तक का उपयोग करना चाहिए।

अपनी पुस्तकी रक्षा के लिये भी किसी दूसरे की वस्तु लेना चोरी है। यह अच्छे छात्र का लक्षण नही है। कभी किसी की चोरी न करो।

(तटस्थकुमार की ओर मुंह करके हाथ लम्बा करते

हुए) अच्छा, तटस्थकुमार ! तुम अपनी पुस्तक बताओ ।

तटस्थ : श्रीमान्जी ! मैं पुस्तक के झगडे मे नही पड़ता । यदि अच्छी रखो तो प्रशंसा होती है और यदि बुरी रखो, तो निन्दा होती है । मैं निन्दा प्रशसा से दूर रहना चाहता हू, इसलिए मैंने यहा से पुस्तक ही नही ली ।

यहां सुनते हुए कुछ स्मरण रह जाता है, तो मुझे प्रसन्नता नही, यदि कुछ स्मरण नही रहता तो खेद नही । मैं प्रसन्नता और खेद को बुरा समझता हूं । मैं परीक्षा भी इसलिये नही देता । यदि उत्तीर्ण हो जाय तो अभिमान होता है, यदि अनुत्तीर्ण हो जाय, तो अपमान होता है । मैं मानापमान मे पड़ना नही चाहता ।

अध्या० : तटस्थकुमार ! तुम्हारी ये बाते ऐसी हैं कि 'मक्खी न बैठ, इसलिए नाक ही कटवा लो ।' परन्तु होना यह चाहिए कि नाक रखो, पर उस पर मक्खी बैठने न दो । प्रशंसा जैसा कार्य करो, पर फूलो नही । उत्तीर्ण बनो, पर अभिमान मत करो ।

धार्मिक कार्यो मे जो प्रसन्नता होती है, वह त्यागने योग्य नही है तथा ज्ञान का स्मरण न रहना आदि धार्मिक कार्य मे कमी पड़ने पर खेद होना ही चाहिये, तभी धर्म मे प्रगति होगी ।

एक बात यह भी तुम ध्यान मे रखना कि अपनी भूल को बडो के सामने प्रकट कर देने में ही लाभ

है। मैंने विवरण-पत्र को देख लिया है, उसके अनुसार तुमने यहां से पुस्तक ली है और उसमे तुम्हारे हस्ताक्षर भी हैं। ज्ञात होता है कि उसे तुमने कही खो दी है। स्मरण रखो, वैद्य या दाई के सामने अपनी सच्ची स्थिति प्रकट कर देने वाला ही अन्त में सुखी बनता है। स्थिति प्रकट न करने वाला कुछ समय के लिये भले ही सुखी बन जाय, पर अन्त में सुखी नही बन सकता। तुम सच्चे सुखी बनने जैसा काम करो। (तीनों की ओर लक्ष्य करके) जैसा तुम तीनो ने नाम पाया है, उसे निरर्थक न बनाते हुए सार्थक बनाओ।

इतने में शाला के अन्य सभी छात्र साथ मे ही अनुशासन व व्यवस्था पूर्वक शाला मे प्रविष्ट हुए। उन्होने क्रम से खड़े होकर श्रावकजी का अभिवादन किया। फिर उसमे से एक प्रतिनिधि छात्र ने कहा—श्रावकजी! हम सभी आपके स्वागत के लिए स्टेशन गये थे। बहुत समय तक वहा गाडी की प्रतीक्षा करते रहे। फिर जानकारी हुई कि आप मोटर से पधार गये हैं। हम आपका स्वागत न कर सके—इसका हमे बहुत खेद है। शाला मे पहुंचने में भी विलम्ब हुआ। आशा है, आप हमे क्षमा करेंगे।

अध्यापकजी ने स्वागत आदि का उत्तर देते हुए कहा—मैं आपके १. अनुशासन, २. व्यवस्था और ३ विनय से प्रसन्न हूं। जानकारी न होने के कारण हुई भूल को भी आपने भूल स्वीकार की—इससे मेरे हृदय मे आप सभी आज से हो बस गये है। आपके ज्ञान और चारित्र की वृद्धि हो—मैं यह शुभकामना करता हू।

विराधित जीवों की ५ जाति

१. एगिंदिया—एक इन्द्रि वाले । २. बेइंदिया—दो इन्द्रिय वाले । ३. तेइंदिया—तीन इन्द्रिय वाले । ४ चउरिंदिया—चार इन्द्रिय वाले । या ५ पंचिंदिया—पांच इन्द्रिय वाले हो उनको,

विराधना के १० प्रकार

१. अभिहया - सम्मुख आते हुओ पर पैर पड़ गया हो या उन्हें हाथ से उठा कर दूर फेंक दिये हो । २ वत्तिया—धूल आदि से ढके हो । ३ लेसिया—मसलें हो (भूमि पर रगडे हो) । ४ संघाइया—इकट्ठे किये हो । संघट्टिया—छुए हो । ६ परियाविया—परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो । ७ किलामिया—मरे हुए जैसे कर दिये हो । ८ उद्दविया—भयभीत किये हों । ९ ठाणाओ—एक स्थान से । ठाण—अन्य स्थान पर । संकामिया—डारे हो । १० जीवियाओ—जीवन से । ववरोविया—रहित किये हो । तो,

प्रतिक्रमण

तस्स—उनका । मि—मेरा । दुक्कड—दुष्कृत (पाप) । मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो ।



'इच्छाकारेण प्रश्नोत्तरी'

प्र० . 'इच्छाकारेण' सामायिक का कौनसा पाठ है ?

उ० : तीसरा पाठ है ।

प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?

उ० . सामायिक लेते समय तिक्खुत्तो से वन्दना करके तथा सामायिक पालते समय सीधे नमस्कार मन्त्र पढने के पश्चात् बोला जाता है तथा सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है ।

प्र० : इच्छाकारेण के पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : आलोचना का पाठ ।

प्र० : इसे आलोचना का पाठ क्यो कहते है ?

उ० : इससे जीव-विराधना की आलोचना की जाती है, इसलिये ।

प्र० : विराधना किसे कहते है ?

उ० : १. जीवो को दु ख पहुचाने वाली क्रिया को तथा,
२ जीवों को दु ख पहुचाना ।

प्र० : क्या चलने से ही विराधना होती है ?

उ० : नही । उठने से, बैठने से, हाथ-पाव पसासने से, सिकोड़ने से आदि क्रियाओ से भी जीव-विराधना होती है ।

प्र० : तब इच्छाकारेण से चलने से होने वाली जीव-विराधना की ही आलोचना क्यो की है ?

उ० : जैसे 'रोटी खाई'—इस वाक्य मे रोटी शब्द से शाक, दाल, चावल आदि सब आ जाते हैं, इसी प्रकार यहा चलने से होने वाली जीव-विराधना की आलो-

विराधित जीवों की ५ जाति

१. एगिंदिया—एक इन्द्रि वाले। २ बेइंदिया—दो इन्द्रिय वाले। ३ तेइंदिया—तीन इन्द्रिय वाले। ४. चउरिंदिया—चार इन्द्रिय वाले। या ५. पचिंदिया—पांच इन्द्रिय वाले हो उनको,

विराधना के १० प्रकार

१. अभिहया - सम्मुख आते हुओं पर पैर पड़ गया हो या उन्हे हाथ से उठा कर दूर फेंक दिये हो। २. वत्तिया—धूल आदि से ढके हो। ३. लेसिया—मसलें हों (भूमि पर रगडे हों)। ४ सघाइया—इकट्ठे किये हो। संघट्टिया—छुए हो। ६. परियाविया—परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो। ७ किलामिया—मरे हुए जैसे कर दिये हो। ८ उद्दविया—भयभीत किये हो। ६ ठाणाओ—एक स्थान मे। ठाण—अन्य स्थान पर। संकामिया—डारे हो। १० जीवियाओ—जीवन से। ववरोविया—रहित किये हो। तो,

प्रतिक्रमण

तस्स—उनका। मि—मेरा। दुक्कड—दुष्कृत (पाप)। मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो।



'इच्छाकारेण प्रश्नोत्तरी'

प्र० : 'इच्छाकारेण' सामायिक का कौनसा पाठ है ?

उ० : तीसरा पाठ है ।

प्र० · यह पाठ कब बोला जाता है ?

उ० : सामायिक लेते समय तिक्खुत्तो से वन्दना करके तथा सामायिक पालते समय सीधे नमस्कार मन्त्र पढने के पश्चात् बोला जाता है तथा सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है ।

प्र० : इच्छाकारेण के पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : आलोचना का पाठ ।

प्र० : इसे आलोचना का पाठ क्यो कहते है ?

उ० . इससे जीव-विराधना की आलोचना की जाती है, इसलिये ।

प्र० . विराधना किसे कहते है ?

उ० · १. जीवो को दु ख पहुचाने वाली क्रिया को तथा, २. जीवों को दु·ख पहुचाना ।

प्र० : क्या चलने से ही विराधना होती है ?

उ० : नही । उठने से, बैठने से, हाथ-पाव पसासने से, सिकोडने से आदि क्रियाओ से भी जीव-विराधना होती है ।

प्र० : तब इच्छाकारेणं से चलने से होने वाली जीव-विराधना की ही आलोचना क्यो की है ?

उ० : जैसे 'रोटी खाई'—इस वाक्य मे रोटी शब्द से शाक, दाल, चावल आदि सब आ जाते हैं, इसी प्रकार यहा चलने से होने वाली जीव-विराधना की आलो-

इस समय तक जैनशाला का समय समाप्त हो चुका था। श्रावकजी यात्रा से थके हुए भी थे, फिर भी वे चाहते थे कि अध्ययन आरम्भ किया जाय और कुछ समय चलाया जाय, परन्तु छात्रो ने श्रावकजी के विश्राम के लिये अध्ययन स्थगित रखा और शान्ति के साथ विसर्जित हो गये।



इच्छाकारेणं : आलोचना का पाठ

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं ! इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं ॥१॥ इरियावहियाए विराहणाए ॥२॥ गमणागमणे ॥३॥ पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंगपणग-दग-मट्टी-मक्कडा-संताणा-संकमणे ॥४॥ जे मे जीवा विराहिया ॥५॥ एगिंदिया, बेइंदिया तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ॥६॥ अभिहया, वत्तिया, लेसिया संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओठाणं, संकामिया, जीवियाओ, ववरोविया ॥७॥ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थः—

आज्ञा के लिए प्रार्थना

भगवं—हे भगवान् ! इच्छाकारेण—आप अपनी इच्छा से।
संदिसह—आज्ञा कीजिए

अपनी इच्छा

मैं । इरियावहिय—इर्यापथिकी-क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का) । पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करना चाहता हूं ।

गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर

इच्छ—आपकी आज्ञा प्रमाण है ।

उद्देश्य

इरियावहियाए—मार्ग मे चलने से हुई । विराहणाए—विराधना से । पडिक्कमिउं—प्रतिक्रमण करने की । इच्छामि—इच्छा करता हू ।

विराधित जीवों के कुछ नाम

गमणागमणे—जाने आने मे । पाणक्कमणे—किसी (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) प्राणी को दबाया हो । बीयक्कमणे—बीज को दबाया हो । हरियक्कमणे—हरित (वनस्पति) को दबाया हो । ओसा—ओस । उत्तिग—कीडी नगरा । पणग—पाच रग की काई (लीलण फूलण) । दग—सचित्त पानी । मट्टी—सचित्त मिट्टी या । मक्कडा सताणा—मकडी के जाले को । संकमणे—कुचला हो । इत्यादि प्रकार से,

विराधित सभी जीव

मे—मैंने । जे—जिन । जीवा—जीवो को । विराहिया—विराधना की हो । चाहे वे,

विराधित जीवों की ५ जाति

१ एगिंदिया—एक इन्द्रि वाले । २. बेइदिया—दो इन्द्रिय वाले । ३ तेइदिया—तीन इन्द्रिय वाले । ४ चउरिंदिया—चार इन्द्रिय वाले । या ५ पर्चिदिया—पांच इन्द्रिय वाले हों उनको,

विराधना के १० प्रकार

१. अभिहया - सम्मुख आते हुओ पर पैर पड़ गया हो या उन्हें हाथ से उठा कर दूर फेंक दिये हो । २ वत्तिया—धूल आदि से ढके हो । ३ लेसिया—मसलें हों (भूमि पर रगडे हों) । ४ सघाइया—इकट्ठे किये हो । सघट्टिया—छुए हो । ६ परियाविया—परिताप (कष्ट) पहुचाया हो । ७ किलामिया—मरे हुए जैसे कर दिये हो । ८ उद्दविया—भयभीत किये हो । ६. ठाणाओ—एक स्थान मे । ठाणं—अन्य स्थान पर । संकामिया—डारे हों । १० जीवियाओ—जीवन से । ववरोविया—रहित किये हो । तो,

प्रतिक्रमण

तस्स—उनका । मि—मेरा । दुक्कड—दुष्कृत (पाप) । मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो ।



'इच्छाकारेण प्रश्नोत्तरी'

प्र० : 'इच्छाकारेण' सामायिक का कौनसा पाठ है ?
उ० : तीसरा पाठ है ।

प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ० . सामायिक लेते समय तिक्खुत्तो से वन्दना करके तथा सामायिक पालते समय सीधे नमस्कार मन्त्र पढने के पश्चात् बोला जाता है तथा सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है ।

प्र० : इच्छाकारेणं के पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ० : आलोचना का पाठ ।

प्र० · इसे आलोचना का पाठ क्यो कहते हैं ?
उ० इससे जीव-विराधना की आलोचना की जाती है, इसलिये ।

प्र० . विराधना किसे कहते है ?
उ० : १. जीवो को दु ख पहुचाने वाली क्रिया को तथा, २. जीवो को दु ख पहुचाना ।

प्र० . क्या चलने से ही विराधना होती है ?
उ० : नही । उठने से, बैठने से, हाथ-पाव पसासने से, सिकोडने से आदि क्रियाओ से भी जीव-विराधना होती है ।

प्र० : तब इच्छाकारेण से चलने से होने वाली जीव-विराधना की ही आलोचना क्यो की है ?
उ० : जैसे 'रोटी खाई'—इस वाक्य मे रोटी शब्द से शाक, दाल, चावल आदि सब आ जाते हैं, इसी प्रकार यहा चलने से होने वाली जीव-विराधना की आलो-

चना मे सभी प्रकार से होने वाली जीव–विराधना की आलोचना की गई समझनी चाहिये ।

प्र० . जीव रक्षा के लिये यदि किसी जीव को एक स्थान से दूसरे सुरक्षित स्थान पर पूंजकर हटावें, तो क्या विराधना का पाप लगता है ?

उ० · नही । बिना कारण सुख से बैठे जीवो को इधर–उधर पूंजकर हटाना ठीक नही है । पर रक्षा के लिये तो उन्हे पूंज कर एक स्थान से दूसरे सुरक्षित स्थान पर हटाना ही चाहिए । इससे उन्हें कष्ट तो होता ही है पर इसके लिए दूसरा उपाय नही है । जो इससे थोड़ी विराधना होती है, उसके लिए 'मिच्छा मि दुक्कड' देना (कहना) चाहिए ।

प्र० : क्या किसी का मन दुखाना तथा कटुवचन बोलना विराधना नही है ?

उ० है । इसलिए किसी का मन दुखे ऐसा काम भी नही करना चाहिए तथा ऐसी वाणी भी नही बोलनी चाहिए । इस पाठ मे यद्यपि शरीर को कष्ट पहुंचाने से होने वाली १० प्रकार की विराधना का ही 'मिच्छा मि दुक्कड' दिया है (कहा है), पर उससे मन–वचन की विराधना का मिच्छा मि दुक्कड भी समझ लेना चाहिए ।

प्र० : क्या 'मिच्छा मि दुक्कड' कहने से ही पाप निष्फल हो जाता है (धुल जाता है) ?

उ० : नही । बिना मन केवल जीभ से कहने से पाप निष्फल नही हो जाता । मन के पश्चात्ताप के साथ कहने से

अवश्य ही निश्फल होता है। अतः 'मिच्छा मि दुक्कड' मन के पश्चात्ताप के साथ कहना चाहिए।

प्र० : जीव–विराधना न हो—इसका उपाय क्या है ?

उ० : 'यतना रखना'।

प्र० : 'यतना' किसे कहते हैं ?

उ० : १. जीव-विराधना का प्रसंग न आवे—इसका पहले से ही ध्यान रखना तथा २ प्रसंग आने पर जीव–विराधना टालने का प्रयत्न करना।

प्र० : जीव-विराधना न हो—इसके लिए पहले से ही ध्यान कैसे रखना चाहिये ?

उ० : जीव–विराधना के स्थान से दूर बैठना चाहिये। जैसे पृथ्वीकाय की यतना के लिये जहा सचित्त मिट्टी हो, अपकाय की यतना के लिये जहां पानी के घडे रखे हो, नल चलता हो, तेजस्काय की यतना के लिये जहा लोग आग तपते हो, वायुकाय की यतना के लिए जहा वायु अधिक चलती हो, वनस्पतिकाय की यतना के लिए जहां धान के थैले पड़े हो, घट्टी हो, वृक्षो से पत्ते-फूल–बीज गिरते हो, त्रसकाय की यतना के लिये जहा कीडो-मकोड़ो के बिल हो, मकडी के जाले हो, खटमलो के स्थान हो, कीड़ी, मकोडी, मकडी आदि के जाने–आने के मार्ग हो—वहां नही बैठना चाहिए। यदि दूसरा स्थान न हो, तो हाथ भर दूरी से बैठने का ध्यान रखना चाहिये—जिससे पृथ्वीकायादि तथा द्वीन्द्रियादि की हिंसा का प्रसंग ही उपस्थित न हो।

इसी प्रकार कुत्ते, गाय आदि घुस जाय, ऐसे फाटक खुले नही रखने चाहिये, जिससे फिर उन्हें ताड़कर निकालना न पडे । गिरकर कोई जीव कैद न हो जाय या मर न जाय—इसलिए पात्र खुले नही रखने चाहिये । किसी का पैर पड़ कर समूर्च्छिम जीवो की हिंसा न हो, मच्छर आदि पैदा न हों—इसलिए मल-मूत्र जहा-तहा परठना (डालना) नही चाहिये । किसी का मन न दु.ख इसलिये मीठी तथा ऊंची बोली मे ज्ञान-चर्चा या बातचीत करनी चाहिए । बिना पूछे कोई भी काम नही करना चाहिए । इत्यादि ध्यान रखने से जीव-विराधना का प्रसंग प्राय. नही आता ।

प्र० : जीव-विराधना का प्रसंग आने पर विराधना टालने के लिये क्या प्रयत्न करना चाहिये ?

उ० . अधिक जीव-विराधना न हो—इसका प्रयत्न करना चाहिए । जैसे पृथ्वीकाय की यतना के लिए जाते-आते पैर मे मिट्टी लग जाय, तो पैरो को पूजकर बैठना चाहिए । अपकाय की यतना के लिये कपड़ा पानी से भीग जाय, तो उसे एक ओर रख देना चाहिये । रात्रि को बाहर जाते-आते मस्तक और अन्य अग कपड़े से भली-भाति ढककर जाना चाहिये, (जिससे रात्रि को सूक्ष्म बरसने वाली वर्षा के जीवों की मस्तक तथा अन्य अगो की ऊष्णता से विराधना न हो ।) तेजस्काय की यातना के लिए वस्त्र मे कोई चिनगारी लग जाय, तो यतना से दूर कर देना चाहिये । वायुकाय की यतना के लिये

वायु से कपड़े उडने लगे, तो वायु–रहित स्थान में जाकर बैठ जाना चाहिए । वनस्पतिकाय की यतना के लिये पत्ते, बीज आदि आ गिरें, तो धीरे–से उठा कर एक ओर जाकर रख देना चाहिये, पर बैठे–बैठे फेंकना नही चाहिए । त्रस काम की यतना के लिये कीडी, मकोडी आदि आसन या शरीर पर चढ जाय, तो देख–पूंज कर अलग करना चाहिए । कुत्ते आदि को शब्द से धीरे-से ही दूर करना चाहिए । दिन मे देखकर तथा रात्रि मे पूंजकर उठना-बैठना तथा सोना चाहिए । शरीर को देख–पूंजकर खुजालना चाहिए । ज्ञान-चर्चा या बातचीत करते हुए कोई कटु शब्द निकल जाय या कभी किसी के मन के विपरीत कोई काम हो जाय, तो हाथ जोडकर नम्रता से क्षमा-याचना करनी चाहिए इत्यादि प्रयत्न करने से अधिक होने वाली विराधना टल जाती है ।

प्र० : इच्छाकारेणं से क्या केवल जीव-विराधना की आलोचना की जाती है ?

उ० : नही । अट्ठारह पापो मे जीव–विराधना (हिंसा) का पाप पहला (मुख्य) है । इसलिए 'इच्छाकारेणं' से जो जीव-विराधना की आलोचना की है, उससे शेष रहे हुए १७ पापो की भी आलोचना की गई समझनी चाहिए । (यहा भी पहले दिया हुआ 'रोटी खाई' का दृष्टान्त समझ लेना चाहिए) ।



तस्सउत्तरी । उत्तरीकरण का पाठ

तस्स-उत्तरी-करणेण, पायच्छित्त करणेणं विसोहि-करणेणं, विसल्ली-करणेणं, पावाणं कम्माणं, निग्घायणट्ठाए. ठामि काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएण खासिएणं, छीएण जंभाइएण, उड्डुएण, वाय-निसग्गेणं, भमलीए, पित्त-मुच्छाए ।१। सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं, दिट्ठि-संचालेहिं, ।२। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो ।३। जाव अरिहताणं भगवं-ताणं णमोक्कारेण न पारेमि ।४। ताव काय ठाणेण मोणेण झाणेण, अप्पाणं वोसिरामि ।५।

शब्दार्थ :

किसके लिए ?

१ तस्स—उसकी (उस पाप सहित आत्मा की) उत्तरी—विशेष उत्कृष्टता । करणेण—करने के लिए । २. पायच्छित्त—प्रायश्चित्त । ३ विसोहि—विशुद्धि तथा ४ विसल्ली—शल्य (काटे) रहित । करणेण—करने के लिए । ५ पावाण—आठो या (अट्ठारह ही) पाप । कम्माण—कर्मो का । निग्घायणट्ठाए—नाश करने के लिए ।

क्या करता हूं ?

काउस्सग्ग—कायोत्सर्ग । ठामि—करता हू ।

किन आगारों को छोड़ कर ?

१. ऊससिएणं—उच्छ्वास (ऊ चा श्वास) । २ नीससिएण—

निश्वास (नीचा श्वास) । ३ खासिएणं—खांसी । ४. छीएण—छीक । ५. जभाइएण—जंभाई (उबासी) । ६. उड्डुएण—उगाल (डकार) । ७. वायनिसग्गेण—अधोवायु । ८. भमलीए—भ्रम (पित्त-के उठाव से होने वाला चक्कर) ९ पित्तमुच्छाए—पित्त-विकार की मूर्च्छा । १० सुहुमेहिं—सूक्ष्म (थोडा, हल्का) । ११. अगसचालेहिं—अंग का सचार (अंगो का फडकना, रोमाच होना हिलना) । १२ खेल—श्लेष्म (कफ) का । सचालेहिं—सचार । १३. दिट्ठि—दृष्टि (आखो का, पलको का) । सचालेहिं—सचार ।
एवमाइएहिं—इत्यादि । आगारेहिं—आगारो को । अन्नत्थ—छोडकर ।

क्या हो ?

मे—मेरा । काउसग्गो—कायोत्सर्ग । अभग्गो—थोडा भी खण्डित न हो । अविराहिओ—पूरा नष्ट न हो ।

कब तक ?

जाव—जब तक । अरिहताण—अरिहत । भगवताण—भगवान् को । नमुक्कारेणं—नमस्कार करके (णमो अरिहताण कह कर) न—(कायोत्सर्ग को) न । पारेमि—पार लू ।

तब तक कायोत्सर्ग कैसे ?

ताव—तब तक । काय—काया को । ठाणेण—(एक स्थान पर) स्थिर करके । मोणेण—(वचन से) मौन करके । झाणेण—(मन से) ध्यान करके (रहूंगा) ।
अप्पाण—(पहले की अपनी पापी) आत्मा को । वोसिरामि—वोसिराता हू ।

तस्सउत्तरी । उत्तरीकरण का पाठ

तस्स-उत्तरी-करणेणं, पायच्छित्त करणेणं विसोहि-करणेणं, विसल्ली-करणेणं, पावाणं कम्माण, निग्घायणट्ठाए. ठामि काउस्सग्गं । अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं खासिएण, छीएणं जभाइएणं, उड्डुएण, वाय-निसग्गेण, भमलीए, पित्त-मुच्छाए ।१। सुहुमेहिं अग-संचालेहिं, सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं, दिट्ठि-संचालेहिं, ।२। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो ।३। जाव अरिहंताणं भगवं-ताणं णमोक्कारेण न पारेमि ।४। ताव कायं ठाणेण मोणेण झाणेण, अप्पाणं वोसिरामि ।५।

शब्दार्थ :

किसके लिए ?

१. तस्स—उसकी (उस पाप सहित आत्मा की) उत्तरी—विशेष उत्कृष्टता । करणेणं—करने के लिए । २. पायच्छित्त—प्रायश्चित्त । ३ विसोहि—विशुद्धि तथा ४. विसल्ली—शल्य (काटे) रहित । करणेणं—करने के लिए । ५. पावाणं—आठो या (अट्ठारह ही) पाप । कम्माणं—कर्मो का । निग्घायणट्ठाए—नाश करने के लिए ।

क्या करता हूं ?

काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग । ठामि—करता हू ।

किन आगारों को छोड़ कर ?

१. ऊससिएणं—उच्छ्वास (ऊंचा श्वास) । २. नीससिएणं—

निश्वास (नीचा श्वास)। ३. खासिएणं—खांसी। ४. छीएण—छीक। ५. जभाइएणं—जभाई (उबासी)। ६ उड्डुएण—उगाल (डकार)। ७ वायनिसग्गेण—अघोवायु। ८. भमलीए—भ्रम (पित्त-के उठाव से होने वाला चक्कर) ९ पित्तमुच्छाए—पित्त-विकार की मूर्च्छा। १०. सुहुमेहिं—सूक्ष्म (थोड़ा, हल्का)। ११. अंगसचालेहिं—अंग का सचार (अगो का फडकना, रोमाच होना हिलना)। १२ खेल—श्लेष्म (कफ) का। सचाल्नेहिं—सचार। १३. दिट्ठि—दृष्टि (आंखो का, पलको का)। सचालेहिं—सचार।

एवमाइएहिं—इत्यादि। आगारेहिं—आगारो को। अन्नत्थ—छोडकर।

क्या हो ?

ने—मेरा। काउसग्गो—कायोत्सर्ग। अभग्गो—थोडा भी खण्डित न हो। अविराहिओ—पूरा नष्ट न हो।

कब तक ?

जाव—जब तक। अरिहंताण—अरिहत। भगवताण—भगवान् को। नमुक्कारेण—नमस्कार करके (णमो अरिहताण कह कर) न—(कायोत्सर्ग को) न। पारेमि—पार लू।

तब तक कायोत्सर्ग कैसे ?

ताव—तब तक। काय—काया को। ठाणेण—(एक स्थान पर) स्थिर करके। माणेणं—(वचन से) मौन करके। झाणेण—(मन से) ध्यान करके (रहू गा)।

अप्पाण—(पहले की अपनी पापी) आत्मा को। वोसिरामि—वोसिराता हू।

'तस्सउत्तरी' प्रश्नोत्तरी

प्र० : 'तस्सउत्तरी' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?

उ० : चौथा पाठ है ।

प्र० यह पाठ कब बोला जाता है ?

उ० : 'इच्छाकारेण' के बाद ।

प्र० : यह पाठ बोल कर क्या किया जाता है ?

उ० : कायोत्सर्ग ।

प्र० . कायोत्सर्ग मे क्या बोला जाता है ?

उ० : सामायिक लेते समय इच्छाकारेणं और पालते समय लोगस्स बोला जाता है ।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० . उत्तरीकरण का पाठ ।

प्र० : इसे उत्तरीकरण का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ० इससे आत्मा को विशेष उत्कृष्ट बनाने के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की जाती है, इसलिये ।

प्र० : प्रायश्चित किसे कहते है ?

उ० : १ जिससे पाप कटकर आत्मा शुद्ध बने तथा २. पाप कटकर आत्मा का शुद्ध बनना ।

प्र० . विशुद्धि किसे कहते है ?

उ० . अच्छे परिणामो से (विचारो से) आत्मा का विशेष शुद्ध बनना ।

प्र० : शल्य (मोक्ष-मार्ग के कांटे) कितने हैं ?

उ० : तीन हैं—१. माया-शल्य (क्रोध, मान, माया, लोभ)

२ निदान-शल्य (धर्मकरणी का मोक्ष के अलावा फल चाहना) ३. मिथ्यादर्शन–शल्य (मिथ्यात्व)।

प्र० : आगार (आकार) किसे कहते है ?

उ० : प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) में रहने वाली १. मर्यादा तथा २. छूट को।

प्र० : कायोत्सर्ग मे आगार क्यो रखे जाते हैं ?

उ० : क्योकि १. जीव-रक्षा आदि के लिये कायोत्सर्ग बीच मे छोड़ना पडता है तथा २. कायोत्सर्ग में श्वास आदि रोके नही जा सकते।

प्र० : प्रकट 'इच्छाकारेण' से एक बार पाप धुल जाने पर दुवारा कायोत्सर्ग से और उसमें 'इच्छाकारेण' या 'लोगस्स' से पापो शा नाश करने की आवश्यकता क्या है ?

उ० : जैसे अधिक मैला कपडा एक वार पानी से धोने से पूरा स्वच्छ नही होता, उसे दुवारा क्षार (सोड़ा, साबुन आदि) लगा कर धोना पड़ता है उसी प्रकार आत्मारूप कपड़ा अधिक पाप वाला होने पर प्रकट आलोचनारूप पानी से पूरा धुल नही पाता, इसलिये उसे कायोत्सर्ग और उसमें 'इच्छाकारेण' या लोगस्स–रूप क्षार लगाकर दुबारा पूरा स्वच्छ बनाना पड़ता है।

प्र० : मच्छर आदि काटने लगे, तो इच्छाकारेणं या लोगस्स पूरा होने से पहले ही 'णमो अरिहंताण' कहकर कायोत्सर्ग पाला जा सकता है क्या ?

उ० : नहीं। मच्छरादि काटने लगे, तो कष्ट सहन करना

चाहिए। कष्ट आने पर उन्हें सहन करने पर ही सच्चा कायोत्सर्ग होता है। ऐसा कायोत्सर्ग ही सच्चा प्रायश्चित्त है। वहीं पापो को पूरा धोकर आत्मा को पूरा विशुद्ध बना सकता हैं। यदि मच्छरादि के काटने से कायोत्सर्ग पाल लिया जाय, तो वह कायोत्सर्ग का भग कहलाता है।

प्र० : 'इच्छाकारेण' या 'लोगस्स' पूरे गिनने के बाद ही कायोत्सर्ग पाला जाता है, तो पारने के लिए 'णमो अरिहंताण' कहने की आवश्यकता क्या है?

उ० : १ कायोत्सर्ग आदि जो भी प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) जितने समय के लिए किए जाते हैं, उसमें कुछ और समय बढाने का नियम है, उसे पालने के लिए। यह नियम इसलिए है कि समय से पहले प्रत्याख्यान पालने से जो व्रत भग हो सकता है, वह न हो सके तथा २ व्यवस्थित कार्य-पद्धति के लिये।

प्र० : जहां कायोत्सर्ग किया हो, वहा आग लग जाय, बाढ आ जाय, डाकू लूटने लगे, राजा का उपद्रव हो जाय, भीत, छत आदि गिरने लगे, सर्प, सिंह आ जाय—तो उस समय प्राण-रक्षा के लिए वहा से हटकर दूर जाना पडे, तो कायोत्सर्ग का भंग होता है या नही?

उ० : जहा तक हो सके, मृत्यु तक का भी भय छोडकर कायोत्सर्ग मे दृढ रहना श्रेष्ठ है, परन्तु यदि कोई प्राण-रक्षा के लिए ऐसा कर ले, तो कायोत्सर्ग भंग नही माना जाता।

प्र० : प्राणी-रक्षा के लिए—जैसे बिल्ली चूहे को पकडती

हो, तो बिल्ली से छुड़ाकर चूहे की रक्षा के लिए कायोत्सर्ग बीच मे ही छोड़ा जा सकता है या नही ? अथवा स्वधर्मी की सेवा करने के लिए—जैसे वे मूर्च्छा खाकर गिर रहे हो या गिर पड़े हो, तो उन्हें उठाने करने के लिए कायोत्सर्ग बीच मे ही छोड़ा जा सकता है या नही ?

उ० : १. प्राणी-रक्षा २. स्वधर्मी सेवा आदि के लिए तत्काल कायोत्सर्ग बीच मे ही छोड़ देना चाहिये। इससे कायोत्सर्ग भग नही होता, क्योकि कायोत्सर्ग मे ऐसी मर्यादा रखी जाती है। परन्तु इन कार्यों को समाप्त करके पुनः कायोत्सर्ग कर लेना चाहिये।

प्र० : कायोत्सर्ग समाप्त होने पर क्या बोलना चाहिए ?

उ० : एक प्रकट नमस्कार मन्त्र तथा ध्यान पारने का पाठ।

प्र० : ध्यान पारने का पाठ बताइए।

उ० : कायोत्सर्ग मे आर्त्त-ध्यान या रौद्र-ध्यान ध्याया हो धर्म--ध्यान या शुक्ल--ध्यान न ध्याया हो, कायो--त्सर्ग मे--मन--वचन--काया चलित हुई हो, तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड।'



लोगस्स : चतुर्विंशति स्तव का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म--तित्थयरे जिणे ।
अरिहन्ते कित्तइस्स, चउवीस पि केवली ॥ १ ॥
उसभ--मजिय च वन्दे, सभव--मभिणदणं च सुमइं च ।
पउमप्पह सुपास, जिण च चन्दप्पह वन्दे ॥ २ ॥
सुविहिं च पुप्फदत सीअल-सिज्जस--वासुपुज्जं च ।
विमल--मणतं च जिण, धम्मं संति च वंदामि ॥ ३ ॥
कुंथुं अरं च मल्लि, वन्दे मुणिसुवयं नमिजिणं च ।
वदामि रिट्ठनेमि, पासं तह वद्धमाण च ॥ ४ ॥
एवमए अभित्थुआ, विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चउवीस पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥
कित्तिय--वंदिय--महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग--बोहिलाभ समाहि--वर--मुत्तम दिन्तु ॥ ६ ॥
चदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागर--वर--गभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:--

गुण-स्मरण के साथ नाम-स्मरण रूप कीर्त्तन की प्रतिज्ञा

लोगस्स—लोक का । उज्जोयगरे—उद्योत करने वाले । धम्म—धर्म के । तित्थयरे—तीर्थ कर—जिणे । आत्म शत्रुओ को जीतने वाले । अरिहते—आत्म--शत्रुओं को नष्ट करने वाले । चउवीसं—चौवीसो । पि—ही । केवली—केवलियो का (केवल ज्ञानियो का) । कित्तइस्सं—कीर्त्तन करूंगा ।

नाम-स्मरण रूप कीर्त्तन

१. उसभ—ऋषभ (नाथ)। च—और। २ अजियं—अजित (नाथ) को। वंदे—वंदना करता हूं। ३. सभव—सम्भव (नाथ। च—और। ४ अभिणदण—अभिनन्दन। च—और। ५. सुमइ—सुमति (नाथ) च और। ६ पउमप्पह—पद्मप्रभ। ७. सुपास—सुपार्श्व (नाथ)। च—और। ८ चदप्पह—चन्द्रप्रभ। जिण—जिनको। वंदे वन्दना करता हू। च—और। ९ सुविहिं—सुविधि (नाथ) पुप्फदतं—(सफेद कमल के फूल के समान स्वच्छ दांत होने से) जिनका दूसरा नाम पुष्पदत है, उनको। १० सीअल—शीतल (नाथ)। ११ सिज्जंस—श्रेयास (नाथ)। १२. वासुपुज्ज—वासुपूज्य। १३ विमलं—विमल (नाथ)। च—और। १४ अणत—अनत (नाथ)। जिण—जिन। १५ धम्म—धर्म नाथ। च—और। १६ सति—शान्ति (नाथ) को। वदामि—वन्दना करता हू। १७ कुंथु—कुन्थु (नाथ)। च—और। १८ अर—अर (नाथ)। १९. मल्लि—मल्ली (नाथ)। २० मुणिसुव्वय—मुनिसुव्रत। च—और। २१ नमि—नमि (नाथ)। जिण—जिनको। वदे—वदन करता हू। २२ रिट्ठनेमि—अरिष्टनेमि। २३ पास—पार्श्व (नाथ)। च—और। तह—उसी प्रकार। २४ वद्धमाण—वर्द्धमान (स्वामी) को। वदामि—वदना करता हू।

प्रार्थना

एवं—इस प्रकार। मए—मेरे द्वारा। अभित्थुआ—स्तुति किये गये। विहुय-रय-मला—जिन्होने पाप-कर्म-रूप रज-मैल धो डाला। पहीण-जर-मरणा—जरा (बुढापा) और मरण

नष्ट कर दिये (वे)। चउवीसं—चोबीस । पि—ही। जिणवरा—जिनवर । तित्थयरा—तीर्थंकर । मे—मुझ पर । पसीयतु—प्रसन्न हो ।

कित्तिय—जिनका (देवताओं के इन्द्र, असुरों के इन्द्र तथा नरेन्द्र तीनो लोक ने) कीर्त्तन किया है । वदिय—वन्दना किया है । महिया—भाव पूजन किया है ऐसे । जे—जो । ए—ये । लोगस्स—(तीनो) लोक मे । उत्तमा—उत्तम । सिद्धा—सिद्ध हैं (वे मुझे) । आरुग्ग—सिद्धत्व (मोक्ष और उसके उपाय) । बोहि—वोधि (सम्यक्त्व) का । लाभं—लाभ (और) उत्तमं—उत्तम । वर—श्रेष्ठ । समाहि—समाधि (चारित्र) । दितु—देवें ।

चदेसु—चन्द्रो से भी । निम्मलयरा—अधिक निर्मल । आइच्चेसु—सूर्यो से भी । अहिय—अधिक । पयासयरा—प्रकाश करने वाले । वर—श्रेष्ठ । सागर—सागर (के समान)। गभीरा—गम्भीर । सिद्धा—सिद्ध । मम—मुझे । सिद्धि—सिद्धि (मोक्ष) । दिसतु—दिखावे (देवे) ।



लोगस्स प्रश्नोत्तरी

प्र० : 'लोगस्स' सामायिक सूत्र का कौनसा पाठ है ?
उ० : पाचवा पाठ है ।
प्र० : यह पाठ कब बोला जाता है ?
उ० : ध्यान पारने का पाठ बोलने के बाद तथा सामायिक सूत्र पालते समय यह कायोत्सर्ग मे भी बोला जाता है ।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ० : चतुर्विशति स्तव का पाठ।

प्र० : इसे चतुर्विशति स्तव का पाठ क्यो कहते हैं ?

उ० : इससे चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की जाती है, इसलिए।

प्र० : 'लोक का उद्योत करने वाले' का भाव क्या है ?

उ० . विश्व का ज्ञान कराने वाले।

प्र० : यहां कीर्त्तन किसे कहा है ?

उ० : मन से १. नाम स्मरण करने को और २. गुण-स्मरण करने को।

प्र० . यहा वन्दन किसे कहा है ?

उ० . मुख से १. नाम स्तुति करने को और २ गुण-स्तुति करने को।

प्र० . यहां पूजन किसे कहा है ?

उ० पूज्य मानकर (स्मरणीय और स्तवनीय मानकर) काया (पचाग नमस्कार) से नमस्कार करना।

प्र० . क्या तीर्थंकरो की फूलो से पूजा करना 'पूजन' नही कहलाता ?

उ० : नही। तीर्थंकरादि के सामने जाते हुए पहला अभिगमन है—सचित्त का त्याग। जब सचित्त को लेकर तीर्थंकरादि के समक्ष जाने का निषेध है, तब सचित्त फूलों से उनकी पूजा करना 'पूजन' कैसे कहला सकता है ?

प्र० कीर्त्तन तथा वन्दन से क्या होता है ?

उ० : १ ज्ञान बढता है। जैसे गुणों के स्मरण तथा स्तुति से यह ज्ञान होता है कि कौनसे गुणोवाला देव

सच्चा देव हो सकता है तथा नामों के स्मरण एवं स्तुति से यह ज्ञान होता है कि ऐसे गुणो वाले सच्चे देव कौन हुए ?

२. श्रद्धा बढती है । जैसे—इन गुणों वाले देव ही सच्चे देव हैं तथा इन नामो वाले देव ही सच्चे देव हुए ।

३. नये पाप-कर्म बधते हुए रुकते हैं । क्योकि मन मे स्मरण चलने से मन मे आहारादि की संज्ञाएं उत्पन्न नही होती तथा वचन से स्तुति होती रहने पर वचन से स्त्री आदि विकथाएं नही होती ।

४. पुण्य बंधते हैं क्योकि स्मरण मन का शुभ योग है तथा स्तुति वचन का शुभ योग है ।

५. पुराने पाप-कर्म क्षय होते हैं । क्योकि स्मरण तथा स्तुति, स्वाध्याय तथा धर्म-ध्यान रूप हैं ।

प्र० लोगस्स मे तीर्थंकरो को, जो अरिहन्त है, उन्हे सिद्ध भी क्यो कहा ?

उ० : १. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्त-राय ये आठ कर्मो मे चार मुख्य कर्म हैं । इनको नष्ट कर देने से तीर्थंकरो का आत्म-कल्याण का काम प्राय: सिद्ध हो चुका है, इसलिए २. वर्त्तमान की अपेक्षा तो वे सिद्ध हैं ही ।

प्र० : क्या तीर्थंकर किसी पर प्रसन्न होते हैं ?

उ० . नहीं । क्योकि वे राग-द्वेष रहित होते हैं ।

प्र० . तव 'तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना क्यो की जाती है ?

उ० . इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से हम मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता आती है और हम में मोक्ष–प्राप्ति की योग्यता आते ही 'तीर्थंकरो का प्रसन्न होना' माना गया है।

प्र० . क्या तीर्थंकर किसी को सम्यक्त्व और चारित्र देते हैं तथा किसी को मोक्ष दिखाते हैं ?

उ० . नही। तीर्थंकर तो केवल सम्यक्त्व और चारित्र का उपदेश ही देते है। इनका धारण तो जीव अपनी योग्यता जगने पर ही करता है तथा स्वय पुरुषार्थ करके ही मोक्ष जाता है।

प्र० : तब 'तीर्थंकर बोधि तथा समाधि दे, मोक्ष दिखावे'– ऐसी प्रार्थना क्यो की जाती है ?

उ० इसलिए कि ऐसी प्रार्थना से वे हमें सम्यक्त्व तथा चारित्र का उपदेश देते हैं। उनके उपदेश से हम में योग्यता जगती है और हम सम्यक्त्व तथा चारित्र ग्रहण करते है, इसलिए उनके उपदेश देने को ही 'बोधि समाधि देना' माना गया है और उनके उपदेश के अनुसार सम्यक्त्व तथा चारित्र का पालन करके ही जीव मोक्ष देखते है, इसलिये उनके उपदेश देने को ही 'मोक्ष दिखाना' माना गया है।

प्र० . इसे दृष्टान्त देकर स्पष्ट कीजिए।

उ० . जैसे वैद्य तो केवल औषधि बताता है। औषधि खरीद कर लेने और खाकर नीरोग बनने का काम रोगी ही करता है, परन्तु ये दोनो काम 'वैद्य औषधि बतावे' उसके बाद होते हैं। इसलिए कहा यह जाता है कि वैद्य ने औषधि दी और आरोग्य दिलाया।

इसी प्रकार तीर्थंकर तो केवल उपदेश देते हैं, उसे धारण करना और कर्म काट कर मुक्ति देखने का काम जीव ही करता है। परन्तु ये दोनो काम तीर्थंकर के उपदेश से होते है, इसलिए कृतज्ञता के कारण कहा यही जाता है कि तीर्थंकर सम्यक्त्व तथा चारित्र देते हैं और मोक्ष दिखाते है।

प्र० . आज तीर्थंकर जब कि मोक्ष मे पधार गये हैं और उपदेश नही देते हैं, तब ऐसी प्रार्थना क्यो की जाय ?

उ० . इसलिए कि वे जो उपदेश दे गये हैं, वे हम मे उतरें और हम मोक्ष देखे। ऐसी प्रार्थना से उनके उपदेश धारण करने की हमारी भावना दृढ़ बनती है और धारण कर हम मोक्ष के निकट बनते हैं।

प्र० : क्या तीर्थंकरो की प्रार्थना से सासारिक पदार्थ—जैसे पत्नी, पुत्र, धन, घर आदि मिल सकते हैं ?

उ० · हा।

प्र० : तो क्या सासारिक पदार्थो को तीर्थंकर देते है ?

उ० : नही। किन्तु उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर तीर्थं-करो के भक्त देव सासारिक पदार्थ दते हैं या अपने-आप सांसारिक पदार्थ मिलते हैं।

प्र० : क्या तीर्थंकरो से सासारिक पदार्थ की प्रार्थना करना उचित है ?

उ० : नही। लोगस्स मे की गई प्रार्थना के समान मोक्ष की पात्रता आये, सम्यक्त्व जागे, चारित्र धारण हो, मोक्ष प्राप्त हो—ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए।

प्र० : यदि कोई सासारिक प्रार्थना करता हो, तो ?

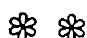
उ० : करना छोड़ दे । न छोड़ सके तो सासारिक प्रार्थना को दुर्बलता समझे और धार्मिक प्रार्थना को ही सच्ची प्रार्थना समझे ।

प्र० · तीर्थंकर चन्द्रो से अधिक निर्मल कैसे ?

उ० : चन्द्र में कुछ कलक (कालापन) दीखता है, पर तोर्थंकरों मे चार घाति--कर्म--रूप कलक नही होता, इसलिए वे चन्द्रो से अधिक निर्मल है ।

प्र० : तीर्थंकर सूर्यों से अधिक प्रकाश करने वाले कैसे ?

उ० - सूर्य कुछ ही क्षेत्र तक प्रकाश करता है, पर तीर्थंकर अपने केवलज्ञान से सब क्षेत्रो को जानते हैं और प्रकाशित करते हैं । इसलिए तीर्थंकर सूयो से अधिक प्रकाश करने वाले हैं ।



नमोत्थुणं : शक्रस्तव का पाठ

(पहला) नमोत्थुण अरिहंताण भगवताण ।।१।। आइगराणं तित्थयराणं सयसबुद्धाणं ।।२।। पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिस-वर-पु डरीयाणं पुरिस--वर--गधहत्थीणं ।।३।। लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाण लोगपज्जोयगराणं ।।४।। अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ।।५।। धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्म-वर-चाउरत-चक्क-

वट्टीणं ॥६॥ 'दीवो*ताणं सरणं गई पइट्ठा' अप्पडिहयं-वर नाण दंसणधराणं, विअट्टछउमाणं ॥७॥ जिणाणं जाव-याणं तिन्नाणं, तारयाणं बुद्धाणं बोहणा, मुत्ताणं मोय-गाणं ॥८॥ सव्वनूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय मव्वाबाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संप-त्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं ॥९॥ (दूसरा) नमोत्थुणं जाव सिद्धिगइ—नामधेयं ठाणं सपाविउकामाणं । नमो जिणाणं जियभयाणं ।

शब्दार्थ :

नमोत्थुणं—नमस्कार हो ।

किनको ?

अरिहंताणं—सभी अरिहन्त । भगवन्ताणं—भगवन्तों को ।

अरिहन्त भगवान् स्वयं कैसे हैं ?

आइगराणं—धर्म की आदि करने वाले । तित्थयराणं—धर्मतीर्थ की रचना करने वाले । सयं—स्वयं ही । संबुद्धाण—बोध पाने वाले ।

अरिहंत भगवान् सब में कैसे हैं ?

पुरिसुत्तमाणं—सब पुरुषो मे श्रेष्ठ । पुरिस—सब पुरुषों में । सीहाणं—सिंह के समान (पराक्रमी) । वर—श्रेष्ठ । पुंडरीयाणं—पुण्डरीक कमल के (श्रेष्ठ जाति के कमल के) समान (मनोहर) । वर—श्रेष्ठ । गंधहत्थीणं—गंधहस्ती के

---

* व्याकरण की दृष्टि से 'दीव-ताणसरण-गई-पइट्ठाण' पाठ होना चाहिए । किन्तु 'उववाइयसुत्त' मे उपर्युक्त पाठ ही है ।

(जिसके मद की गंध से दूसरे हाथी भाग जाते हैं, उसके) समान (परवादियों को भगाने वाले)।

अरिहंत भगवान् विश्व के लिए कैसे है ?

लोगुत्तमाण—लोक मे उत्तम। लोग—लोक के। नाहाण—नाथ (अनिष्ट का नाश करने वाले)। हियाणं—हितकारी (इष्ट की प्राप्ति कराने वाले)। पइवाण—दीपक (लोक को प्रकाश देने वाले) तथा पज्जोयगराणं—प्रद्योत करने वाले (लोक को प्रकाशित करने वाले)।

अरिहंत भगवान् हमें क्या देने वाले है ?

अभय—अभय के। दयाण—देने वाले। चक्खु—(ज्ञान की) आंखें। मग्ग—(मोक्ष का) मार्ग। सरणं—(मोक्ष की) शरण। जीव—(सयम रूप) जीवन तथा बोहि—बोधि (सम्यक्त्व) दयाण—देने वाले।

अरिहंत भगवान् हमारे लिए क्या करते है ?

धम्म—धर्म के। दयाण—देने वाले। धम्म—धर्म के। देसयाण—(उप)देशक। धम्म—धर्म के। नायगाणं—नायक। धम्म—धर्म के। सारहीण—सारथी। धम्म—धर्म के। वर—श्रेष्ठ। चाउरंत—चार (गति) का अन्त करने वाले। चक्कवट्टीण—चक्रवर्ती। दीवो—(संसार-समुद्र मे डूबते हुओ को) द्वीप के समान। ताण—त्राणभूत (रक्षक)। सरणं—शरणभूत। गइ—गतिभूत। पइट्ठा—प्रतिष्ठा (आधार)भूत।

किस शक्ति से ऐसा उपकार करते है ?

अप्पडिहय—(क्योकि वे) अप्रतिहत (सभी प्रकार की बाधाओ

रहित) वरनाणं—श्रेष्ठ ज्ञान (केवलज्ञान) तथा दंसणं—केवल दर्शन के। धराण—धारक हैं उन्होने। विअट्टछउमाणं—ज्ञानावरणीयादि चार कर्म नष्ट कर दिये हैं।

अद्वितीय उपकारी : अपने समान बनाने वाले

जिणाण—(स्वय आत्म-शत्रुओ को) जीते हुए। जावयाणं—(तथा दूसरो को भी) जिताने वाले। तिण्णाण—(स्वय ससार समुद्र को) तिरे हुए। तारयाण—तथा दूसरों को भी तारने माले। बुद्धाण—(स्वयं) बोध पाये हुए (बोहयाण—(तथा दूसरो को भी) बोध प्राप्त कराने वाले। मुत्ताणं—(स्वयं) कर्म-बन्धन से छूटे हुए। मोयगाणं—(तथा दूसरों को भी) छुड़ाने वाले (ऐसे) सव्वन्नूण—सर्वज्ञ। सव्वदरिसीण—सर्वदर्शी।

अरिहंत भगवान् कैसे स्थान को पधारे ?

सिवं—शिव (उपद्रवरहित)।अयल—अचल (स्थिर)। अरुअ—अरुज (रोगरहित) अणतं—अनंत (अन्तरहित)। अक्खय—अक्षय (क्षयरहित)। अव्वाबाह—अव्याबाध (बाधारहित) : अपुणरावित्ति—अपुनरावृत्ति (पुनरागमन रहित)। सिद्धि गइ—सिद्धि गति। नामधेय—नाम वाले। ठाण—स्थान को। संपत्ताण—प्राप्त हुए। (दूसरे मे) सपाविउकामाण—पाने की इच्छा वाले (योग्यता वाले)।

जियभयाणं—(ऐसे) भय को जीतने वाले। जिणाण—जिनेश्वर देव को। नमो—नमस्कार हो।



नमोत्थुणं प्रश्नोत्तरी

प्र० : नमोत्थुण सामायिक सूत्र का कौनसा पाट है ?
उ० : सातवां पाठ है ।

प्र० : छठा पाठ कौनसा है ?
उ० : 'करेमि भंते' अर्थात् सामायिक का प्रत्याख्यान लेने का पाठ ।

प्र० : 'करेमि भंते' कब बोला जाता है ?
उ० : सामायिक लेते समय लोगस्स पढ लेने के पश्चात् वन्दना करके ।

प्र० : नमोत्थुण कब पढा जाता है ?
उ० : सामायिक लेते समय 'करेमि भते' से सामायिक लेने के बाद तथा पारते समय लोगस्स के बाद ।

प्र० : इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?
उ० : शक्रस्तव का पाठ ।

प्र० : इसे शक्रस्तव का पाठ क्यो कहते हैं ?
उ० : पहले देवलोक के इन्द्र, जिनका नाम शक्र है, वे भी इसी नमोत्थुणं से अरिहन्तो व सिद्धों की स्तुति करते, इसलिए इसे 'शक्रस्तव' कहा जाता है ।

प्र० : अरिहन्तो तथा सिद्धो की स्तुति (स्तव) कैसे करनी चाहिए ?
उ० : जैसे कि लोगस्स या नमोत्थुण में की गई है, अर्थात् उन्होने दीक्षित बनकर जो तप किये और गुण प्राप्त किये, केवली बनकर जो उपकार किये, मोक्ष पहुंचकर जो सुख प्राप्त किये—उन्ही कार्यों की स्तुति करनी

चाहिए। परन्तु उन्होने संसार में रहते जो कुछ सांसारिक कार्य किये, उसकी स्तुति नही करनी चाहिए।

प्र० : नमोत्थुण के पढने से क्या लाभ हैं ?

उ० - लोगस्स के पढने से जो लाभ हैं, प्राय. वे ही लाभ 'नमोत्थुरा' से भी होते हैं, क्योकि दोनों मे तीर्थंकरों का कीर्त्तन, वन्दन और पूजन किया गया है।

प्र० : लोगस्स और नमोत्थुणं मे क्या अन्तर है ?

उ० : लोगस्स मे प्रधान रूप से १. नाम-स्मरण २. नाम स्तुति ३. नमस्कार और ४ प्रार्थना है तथा नमोत्थुण मे १. गुण-स्मरण २. गुण स्तुति और ३. नमस्कार है।

प्र० : जबकि लोगस्स और नमोत्थुण दोनों समान लाभ वाले है, तब दोनो की क्या आवश्यकता है ?

उ० : १. नाम-स्मरण, नाम-स्तुति, प्रार्थना, गुण-स्मरण, गुरा-स्तुति, नमस्कार आदि सभी भक्ति के विविध रूप हैं। सभी रूपो से की गई भक्ति, सर्वाङ्गीण होती है। अतः लोगस्स, नमोत्थुण दोनो आवश्यक हैं।
२. सभी की आत्माएं समान नही होती। किसी की नाम-स्मरण और नाम-स्तुति-रूप भक्ति में विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की प्रार्थना मे विशेष तल्लीनता होती है। किसी की गुण स्मरण और गुरा स्तुति मे विशेष तल्लीनता होती है, तो किसी की नमस्कार में विशेष तल्लीनता होती है। इनमें से कोई भी भक्त भक्ति के लाभ से वंचित न रहे— इसलिए भी लोगस्स तथा नमोत्थुणं दोनों आवश्यक हैं। ३. कोई नाम-स्मरण या नाम स्तुति या प्रार्थना

या गुण-स्मरण या गुण-स्तुति या नमस्कार इनमें से किसी एक ही प्रकार की भक्ति को उचित और अन्य प्रकार की भक्ति को अनुचित न बतावें, इसलिए भी लोगस्स और नमोत्थुण दोनों आवश्यक हैं।

प्र० : सभी प्रकार की भक्ति मे कौनसी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है ?

उ० : गुण–स्मरण–रूप भक्ति।

प्र० : क्या इस भक्ति से सभी भक्तियो का काम चल सकता है ?

उ० : सामान्यतया नहीं। कोई भक्ति अधिक लाभ कर सकती है, पर दूसरी भक्ति का काम नही कर सकती। इसलिए सभी भक्तियां करनी चाहिए।



सामायिक के ३२ दोष

मन के १० दोष

गाथा :

१. अविवेक २. जसो कित्ती ३. लाभत्थी
४. गव्व ५. भय ६. नियाणत्थी
७. संसय ८. रोष ९. अविणउ,
१०. अबहुमाणए, दोसा भणियव्वा ।। १ ।।

हिन्दी छाया :

१. अविवेक २. यश–कीर्ति ३. लाभार्थी,
४. गर्व ५. भय ६. निदानार्थी ।

७ सशय ८. रोष ६. अविनय,
१०. अबहुमान—ये मनोदोष ॥ १ ॥

१. अविवेक—सावद्य–निरवद्य आदि का विवेक न रखे। २. यश–कीर्ति—नाम, आदर–सत्कार आदि की इच्छा से सामायिक करे। ३ लाभार्थ—धन, पुत्र, स्त्री आदि के लाभ के लिए करे। ४ गर्व—सामायिक की शुद्धता, सख्या तथा अपने कुल आदि का गर्व करे। ५. भय—श्री सघ की निन्दा, समाज का अपवाद, राज का दण्ड, लेनदार की उपस्थिति आदि के भय से करे। ६ निदान—मोक्ष के अतिरिक्त अन्य फल की इच्छा से करे। ७. सशय—अब तक कुछ फल नहीं हुआ, अब क्या होगा ?' आदि सामायिक के फल मे सशय करे। ८. रोष—रूठ-झगड कर सामायिक करे या सामायिक मे राग द्वेष करे। ६ अविनय—सामायिक तथा देव–गुरु–धर्म का विनय न करे। १०. अबहुमान—अति प्रेरणा से या परवश होकर करे, हृदय में बहुमान न हो या न रखे।

वचन के १० दोष

गाथा :

१. कुवयण २. सहसाकारे।
३. सछंद ४. संखेव ५. कलह च।
६. विगहावि ७. हासो ८. ऽसुद्धं,
६. निरवेक्खो १०. मुणमुणा,दोसा दस ॥२॥

हिन्दी छाया।

१. कुवचन २. सहसाकार
३ स्वच्छंद ४. संक्षेप ५. कलह तथा।

६ विकथा ७. हास्य ८ अशुद्ध,
९. निरपेक्ष, १० मुम्मन वचन दोष ।।२।।

१ कुवचन—विषयकारी,कषाययुक्त,अपशब्द आदि वचन कहे। २ सहसाकार—बिना विचारे चार भाषा में से कोई भी भाषा बोले । ३ स्वच्छन्द—निरकुश होकर बोले । ४. संक्षेप—सामायिक की विधि पूरी न करे, पाठो को सक्षेप मे बोले। ५ कलह—वचन युद्ध करे, क्लेशकारी वचन बोले । ६. विकथा—स्त्री कथादि चार कथाओ मे से कोई कथा करे। ७ हास्य—हास्य, कौतूहल, व्यग्य आदि करे । ८, अशुद्ध—पाठो को 'वाईद्ध' आदि अनिचार सहित अशुद्ध पढे अथवा अव्रती को आदर-सत्कार दे, उसे आने-जाने के लिए कहे। ९. निरपेक्ष—पाठ उपयोग-शून्य या उपेक्षा करके पढे । १० मुम्मन—पाठ स्पष्ट न बोले, गुनगुनावे ।

काया के १२ बारह दोष

१, कुआसणं २. चलासण ३. चलदिट्ठी,
४ सावज्ज किरिया ५ आलबण ६ आकुंचण पसारणं ।
८ आलस्स ८ मोडण ९ मल १०. विमासण ।
११. निद्दा १२. वैयावच्चत्ति, बारस काय दोसा ।।३।।

१ कुआसन २. चलासन ३ चलदृष्टि,
४. सावद्यक्रिया ५ आलबन ६ आकुंचन प्रसारण ।
७. आलस्य ८ मोटन ९ मल १० विमासन,
११ निद्रा १२. वैयावृत्य ये बारह काय दोष ।।३।।

१ कुआसन—अविनय-अभिमानयुक्त आसन से बैठे । जैसे—पैर पसार, पांव पर पाव चढाकर बैठे २ चलासन—बिना

कारण अग का आसन, वस्त्र का आसन या भूमि का आसन बदले। ३ चलदृष्टि—दृष्टि स्थिर न रखे, बिना कारण इधर-उधर देखता रहे। ४ सावद्यक्रिया—पाप-क्रिया करे, सासारिक क्रिया करे, आभूषण, घर, व्यापारादि की रखवाली करे या सकेत आदि करे। ५ आलबन—रोगादि कारण बिना भीत, खम्भे आदि का सहारा ले। ६ आकुंचन प्रसारण—अकारण हाथ-पैर सिकौड-पसारे। ७ आलस्य—आलस्य से अग मोडे। ८ मोटन—हाथ-पैर की अगुलिया मोडे-चटकावे। ९ मल—शरीर का मैल उतारे। १० विमासन—शोकासन से बैठे, बिना पूंजे खाज खुजाले, रात्रि मे बिना पूंजे मर्यादा या आवश्यकता से अधिक चले। ११ निद्रा—सामायिक मे निद्रा ले। १२ वैयावृत्य—बिना कारण दूसरो से सेवा करावे (या कपन) स्वाध्यायादि करते डोलता रहे।



'सामायिक प्रश्नोत्तरी'

प्र० : सामायिक कहा करनी चाहिए ?

उ० : सामायिक निरवद्य स्थान मे करें। जहा तक हो, १. जहा सन्त विराजते हो वहा उनके अभाव मे २ जहा श्रावक सामायिकादि धर्म-क्रिया कर रहे हो या ३ करते हो, उस स्थान में सामायिक करे। यदि ४. अपने घर मे सामायिक करना पडे, तो घर की रखवाली आदि के भाव उत्पन्न न हो, ऐसे एकान्त स्थान मे सामायिक करने का उपयोग रखें।

प्र० : सामायिक किस समय करनी चाहिये ?

उ० : यदि सामायिक एक से अधिक या एक करनी हो, तो १. प्रातः उठते ही करे या २. भोजन से पहले तक सामायिक कर लेने का प्रयत्न रखें। यदि उस समय तक न बन सके, तो ३. सूर्यास्त से पहले ही चउ-विहाहार (१. अशन, २. पान, ३. खाद्य, ४ स्वाद्य) या तिविहाहार (पानी छोड़कर) का प्रत्याख्यान करके सायकाल प्रतिक्रमणादि के समय सामायिक करें। अथवा यदि यह भी अनुकूलता न हो, तो ४. जब भी अवसर मिले, तभी सामायिक करें। परन्तु जहा तक हो, किसी भी दिन को सामायिक क्रिया-रहित न जाने देने का प्रयत्न करें।

प्र० : सामायिक का वेश कैसे पहनें तथा उपकरण कैसे रखें ?

उ० : निरवद्य स्थान को देख-पूजकर वहा अपना आसन लगावे। सासारिक वेश—कुरता, टोपी, पगड़ी, पेण्ट पायजामा आदि उतारें। एक लागवाली धोती लगावें (सतीजी के स्थान का आगार)। दुपट्टा लगाना हो, तो स्त्रियो के सामने निश्चित रूप से तथा अन्य समय में भी प्राय. किसी कधे या बाहु को खुला न रखते हुए दुपट्टा लगावें। मुख-वस्त्रिका का प्रतिलेखन करके उसमे डोरा डालकर मुंह पर बांधें। माला, पुस्तक आदि को अपने आसन पर रखे। पूंजनी को पुस्तक से कुछ दूर रखे, पुस्तक पर न रखें।

प्र० : सामायिक लेने की विधि क्या है ?

उ० : सन्तो के उपाश्रय मे सामायिक करने का अवसर

आवे, तो विनय के लिए पहले सन्तों को वन्दन करें फिर वेश-परिवर्तन करें। फिर पुनः १ तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार पचांग वन्दना करें। तिक्खुत्तो से करेमि' तक बोलते हुए तीन बार प्रदक्षिणावर्त करें। फिर दोनो घुटने जमीन पर टिका कर दोनो हाथों को सीप के समान जोडकर मस्तक पर लगाकर वंदामि से पज्जुवासामि' तक का पाठ वोले। फिर पंचांग झुकाते हुए 'मत्थएण वंदामि' कहे। तीन बार वन्दना करके चउवीसत्थव (आलोचना आदि) की आज्ञा ले। यदि गुरुदेव न हों तो पूर्व या उत्तर दिशा में मुह करके भगवान् महावीर-स्वामी को या आचार्य-श्री जी को वदन करें। फिर यदि बडे श्रावक उपस्थित हों तो उनसे 'चउवीसत्थव' की आज्ञा ले। न हो तो भगवान् से ही आज्ञा लें। आज्ञा लेकर २ नमस्कार मंत्र पढ़ें। फिर ३ इच्छाकारेण का पाठ बोलकर ईर्या-पथिक की आलोचना करे। फिर ४. तस्सउत्तरी बोलकर प्रायश्चित्त आदि के लिए कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करें। 'वोसिरामि' तक बोलने के पश्चात् कायोत्सर्ग कर-के कायोत्सर्ग मे इच्छाकारेण के पाठ का 'इरियावहियाए विराहणाए से ववरोविया' तक का अपने मन मे चिन्तन करें इस प्रकार कायोत्सर्गपूर्वक दूसरी बार आलो-चना-रूप प्रायश्चित्त से पूर्ण शुद्धि करके पूर्व प्रतिज्ञा-नुसार 'णमो अरिहंताणं' कह कर कायोत्सर्ग पारे। फिर णमो अरिहन्ताण' से साहूण तक एक प्रकट नमस्कार मन्त्र पढें। फिर ध्यान पारने का पाठ पढें। फिर कीर्त्तन के लिए चतुर्विशतिस्तव-रूप ५ लोगस्स का

पाठ पढ़ें । फिर वन्दन करके गुरुदेव से या बड़े श्रावक से सामायिक का प्रत्याख्यान करें या उनकी आज्ञा होने पर अथवा उनके अभाव में भगवान् की साक्षी से स्वयं ६. 'करेमि भंते' के पाठ से सामायिक का प्रत्याख्यान करें । पाठ मे 'जाव नियम' शब्द से आगे जितनी सामायिकें लेनी हो, उतने मुहूर्त उपरान्त का कथन करें । फिर ७ दो नमोत्थुणं पढें । सिद्ध भगवान् को दिये जाने वाले पहले नमोत्थुरा मे 'ठाण संपत्ताण' तथा अरिहन्त भगवान् को दिये जाने वाले दूसरे नमोत्थुरा मे 'ठाण सपाविउ-कामाण' कहे । इस तरह सामायिक लेने की विधि पूरी हुई ।

प्र० : सामायिक पारने की विधि क्या है ?

उ० : सामायिक पारने की भी प्राय यही विधि है । जो अन्तर है, वह इस प्रकार है:—

सामायिक मे अट्ठारह सावद्य योग (पाप) का प्रत्याख्यान किया जाता है । इसलिए सामायिक करने की तथा उसके लिए चउवीसत्थव की गुरुदेव आदि से आज्ञा ली जाती है । परन्तु सामायिक पारने पर सावद्य योग (पाप) खुले हो जाते है । उन्हे खोलने की गुरुदेव आदि आज्ञा नही देते । इसलिए सामायिक पारने की आज्ञा के लिए वन्दना आदि न करें । सीधे ही २. नमस्कार मन्त्र ३ 'इच्छाकारेण' और ४. 'तस्सउत्तरी' बोलकर कायोत्सर्ग करें । कायोत्सर्ग मे ५. लोगस्स का ध्यान करें । सामायिक लेते समय कायोत्सर्ग मे जैसे इच्छाकारेण के पाठ के कुछ आगे

पीछे के शब्द छोड़े जाते हैं, वैसे लोगस्स में एक भी पद नहीं छोड़े अर्थात् 'लोगस्स से दिसंतु' तक पूरा पाठ बोलें। फिर 'णमो अरिहंताण' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर एक प्रकट नमस्कार मन्त्र तथा कायोत्सर्ग पारने का पाठ कहे। फिर एक प्रकट लोगस्स कहे। 'करेमि भंते' के पाठ से सामायिक ली जाती है। इसलिए पारते समय वह पाठ न बोले। सीधे ही पहले के समान ७ दो नमोत्थुणं दे। फिर सामायिक पारने का पाठ ८ 'एयस्स नवमम्स सामाइयवयम्स' पूरा कहे। फिर तीन नमस्कार मन्त्र पढें। यो यह सामायिक पारने की विधि पूरी हुई।

प्र० : सामायिक की विधि खड़े रहकर करनी चाहिए या बैठ कर ?

उ० : जहा तक शरीर मे थोडी भी शक्ति हो, वहा तक मनोबल रखकर खडे रहकर विधि करना श्रेष्ठ है। शक्ति होते हुए भी विना कारण बैठे-बैठे सामायिक की विधि करने से 'अविनय-अवहुमान' नामक दोष लगता है। कारण होने पर भी जहां तक सम्भव हो, पर्यंक (आलथी-पालथी) आदि अच्छे आसन लगाकर बैठें। कुआसन से नही बैठें।

प्र० : खडे रहने की विधि क्या है ?

उ० : सशक्त और कारणरहित अवस्था मे खडे रहते समय पैरो के अगले भाग मे चार अंगुल का तथा पिछले भाग मे कुछ कम चार अंगुल का अन्तर डालकर खड़े रहना चाहिए। इस समय मस्तक को कुछ झुका-

कर रखना चाहिए तथा दृष्टि चल न रखते हुए स्थिर रखनी चाहिए ।

प्र० : खड़े रहने की ऐसी मुद्रा को क्या कहते हैं और क्यो कहते है ?

उ० : ऐसी मुद्रा को 'जिनमुद्रा' कहते हैं । १. जिनेश्वर (अरिहन्त) भगवान् कायोत्सर्ग आदि इसी मुद्रा से करते हैं, इसलिए इसे 'जिनमुद्रा' कहते है । २. इस मुद्रा से आलस्य पर विजय मिलती है । तन–मन मे दृढता उत्पन्न होकर परिषहो (कष्टो) को सहने की शक्ति आती है । इसलिए भी इसे 'जिनमुद्रा' कहते हैं ।

प्र० : हाथ जोडने की विधि क्या है ?

उ० : दोनो हाथो की अगुलिया आपस मे फसाकर कमल की कली के आकार मे हाथ जोड़ने चाहिए और हाथो की दोनो कोहनियो को नाभि के निकट टिकाना चाहिए ।

प्र० : हाथ जोडने की इस मुद्रा को क्या कहते हैं और क्यो कहते हैं ?

उ० इस मुद्रा को 'योगमुद्रा' कहते है । इससे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र आत्मा जिसका भी ध्यान करना हो, उस मे तन–मन अधिक अच्छे जुड जाते हैं । इसलिए इसे 'योगमुद्रा' कहते हैं ।

प्र० : क्या सामायिक लेने की और पारने की सारी विधि जिनमुद्रा से खडे होकर और योगमुद्रा से हाथ जोड़

कर करनी चाहिए अथवा पर्यंक आदि आसन से बैठ कर और योगमुद्रा से हाथ जोडकर करनी चाहिए ?

उ० : नही । कायोत्सर्ग और नमोत्थुण की विधि छोडकर शेप पाठो की विधि करनी चाहिए ।

प्र० . कायोत्सर्ग की विधि क्या है ?

उ० . कायोत्सर्ग जिनमुद्रा मे खडे होकर या पर्यंकादि आसन से बैठकर करना चाहिए, परन्तु योगमुद्रा से हाथ नही जोडने चाहिए । यदि कायोत्सर्ग जिनमुद्रा से (खडे रहकर) करना हो, तो दोनो हाथो को घुटनो की ओर लम्बे करके रखने चाहिए तथा खुले रखने चाहिए और यदि पर्यंकासन (आलथी–पालथी) से करना हो, तो बाये हाथ को आलथी–पालथी के बीचो-बीच खुला रखना चाहिए और उसी पर दायें (जीमने) हाथ को खुला रखना चाहिए ।

प्र० : कायोत्सर्ग मे हाथ इस प्रकार क्यो रखे जाते है ?

उ० : हाथो को इस प्रकार रखने से देह के प्रति ममता छूटने मे सहायता मिलती है । कायोत्सर्ग मे देह के प्रति ममता छोड़नी चाहिए । इसलिए कायोत्सर्ग में हाथो को इस प्रकार रखा जाता है ।

प्र० : नमोत्थुण देने की विधि क्या है ?

उ० : नमोत्थुण देते समय योगमुद्रा से हाथ जोडने चाहिए तथा बाये घुटने को मोड़कर नीचे भूमि पर टिकाना चाहिए और बायें घुटने को मोडकर खडा रखना चाहिए । (यह नियम सलेखना के पाठ में पढे जाने वाले

नमोत्थुण के लिए लागू नही होता। सलेखना के समय नमोत्थुण पर्यंक आसन से बैठकर पढा जाता है।

प्र० : नमोत्थुण ऐसे आसन से क्यो पढा जाता है?

उ० : नमोत्थुण मे भक्ति की जाती है। भक्ति के समय 'भगवान् बडे हैं और हम छोटे हैं' यह बताने वाला विनयपूर्ण आसन होना चाहिए। शरीर के दाहिने अंग शुभ और बाये अग अशुभ माने गये है। अतः दाहिना घुटना शुभ और बाया घुटना अशुभ है। दाहिना शुभ घुटना नीचे-टिकाना और बाया अशुभ घुटना खडा रखना, भगवान् बड़े है और हम छोटे हैं यह प्रकट करता है। इसलिये नमोत्थुण मे ऐसे आसन से बैठा जाता है। हाथ जोडना तो स्पष्ट ही 'भगवान् (या गुरु) बड़े और हम छोटे'–यह बतलाने वाला है।

प्र० : सामायिक मे क्या करना चाहिए?

उ० : सामायिक मे सावद्य योग (अट्ठारह पाप) त्यागे जाते हैं, इसलिए उन्हे छोडकर निरवद्य योग अपनाना चाहिए। विशिष्ट प्रकार का पुण्य, सवर तथा निर्जरा ये तीनो निरवद्य योग है। इनमे भी ध्यान मुख्य है। इसलिए ध्यान की ओर अधिक लक्ष्य देना चाहिए।

प्र० : धर्म-ध्यान करने तथा टिकाने के आलबन (उपाय) बताइये।

उ० : धर्म-ध्यान के चार आलबन हैं—

१. **वाचना**—वाचना लेना अर्थात् नया तत्त्वज्ञान, नई धार्मिक कथाए या स्तुतिया सीखना।

२ पृच्छना—पूछना, अर्थात् तत्त्वज्ञान, धार्मिक कथा या स्तुतियो मे जो भी शका उत्पन्न हो, उन्हे बडों से (ज्ञानियों से) पूछकर दूर करना तथा जिज्ञासा पूरी करना ।

३. परियट्टणा—परिवर्तना, अर्थात् सीखा हुआ तत्त्व-ज्ञान, सीखी हुई कथाए, स्तुतिया तथा प्राप्त किया हुआ समाधान दुहराना ।

४. अणुप्पेहा—अनुप्रेक्षा, अर्थात् सीखे हुए तत्त्वज्ञान को, धर्म-कथाओ को, स्तुतियो को तथा प्राप्त किये हुए समाधान को दुहराते हुए उस पर चिन्तन करना, बारह भावनाए भाना ।

प्र० : सामायिक शुद्ध और उत्तम कैसे हो ?

उ० : सामायिक के समय चारो आलवनो से धर्म-ध्यान करते रहने पर प्राय. मन पाप मे नही जाता । यदि कभी चला जाय, तो पुनः शीघ्र उससे लौट आता है । मन पाप मे चले जाने पर तत्काल उसे धर्म मे जोडने के साथ ही 'मिच्छा मि दुक्कड' देना (कहना) चाहिए । इस प्रकार करते रहने पर सामायिक नित्य अधिक शुद्ध और उत्तम होती जायेगी ।

प्र० . वहुत ध्यान रखने पर और बहुत प्रयत्न करने पर भी सामायिक मे मन थोड़ा-वहुत पाप मे चला ही जाता है जिससे सामायिक मे अतिचार लग जाता है । अत. जव तक निरतिचार सामायिक करने की योग्यता न आवे, तव तक सामायिक कैसे की जाय ?

उ० : १. किसी भी काम को पूरा शुद्ध करने की योग्यता

पहले नही आती । फिर धर्म के काम मे तो पहले योग्यता आना बहुत कठिन है । योग्यता काम करते-करते धीरे-धीरे ही आती है । जो पहले योग्यता आने की प्रतीक्षा मे काम नही करता, वह योग्यता नही पा सकता, वरन् उसके लिए योग्यता पाने का मार्ग ही दूर हो जाता है । इसलिए सामायिक सातिचार हो, तो भी सामायिक करते रहना चाहिए, २ दूसरी बात यह भी है कि ध्यान और प्रयत्न रखते हुए भी सामायिक में अतिचार लगकर सामायिक में हानि हो जाय, तो भी योग मे लाभ ही अधिक रहेगा । इसलिए भी सामायिक सातिचार होते हुए भी अवश्य करते रहना चाहिए ।

प्र० : हम अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करे, दिन-रात के २९ भाग तक बड़े-बडे पाप करते रहे और केवल एक सामायिक कर ले, तो उससे क्या लाभ हैं ?

उ० : कोई विशेष लाभ नही क्योकि शेष २९ भाग तो पाप मे जाते ही हैं । साथ ही साथ उन पापो के कारण सामायिक के समय मे भी विचारो को अधिक पवित्रता और अच्छे विचारो की अधिक स्थिरता नही रह पाती । इसलिए आप अणुव्रत-गुणव्रत धारण कीजिए और इस प्रकार दिन-रात्रि को अधिक सफल बनाइए ।

प्र० . अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के क्या कारण है ?

उ० अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने के दो कारण है । १. स्वय मे रही हुई पाप की अधिक रुचि और २. कुटुम्ब, समाज, राज्य आदि दूसरो मे रही हुई

अनीति व कुरीति । शुभ भावना और पुरुषार्थ में दृढता लाने पर पहला कारण शीघ्र और बहुत अंशों मे दूर हो सकता है और दूसरा कारण भी कुछ अश तक दूर हो सकता है । अत आप भावना और पुरुषार्थ कीजिए । अणुव्रत-गुणव्रत धारण करना बहुत कठिन नही है ।

प्र० यदि धारण न कर सके तो ?

उ० तो भी सामायिक करने मे आत्मा को कुछ लाभ ही है १ जैसे सारे दिन अड़ियल रहने वाला या उत्पथ मे चलने वाला घोडा यदि ४८ मिनिट में ५ मिनिट भी सुपथ पर चले, तो इसमे कुछ लाभ ही है, हानि नही । २ या जैसे सारे दिन धूल मे खेलने वाला बालक यदि ४८ मिनिट मे ५ मिनिट भी शान्त होकर बैठे, तो उमे लाभ ही है, हानि नही ।
३ या जैसे सारे दिन कष्ट पाने वाले दु खी को यदि ४८ मिनिट में ५ मिनिट भी आत्म-शान्ति मिले, तो लाभ ही है हानि नही ।

इसी प्रकार यदि अणुव्रत-गुणव्रत धारण न करने वाला ४८ मिनिट की एक सामायिक करके उसमे पाच मिनिट भी मन स्थिर रख सके, तो उसमे कुछ लाभ ही है, हानि नही ।

४ जैसे ३० हाथ की रस्सी मे से २९ हाथ रस्सी कुऐ मे पड गई हो और १ हाथ रस्सी मे से भी केवल चार अगुल ही हाथ मे रही हो तो उस चार

अगुल रस्सी से भी वह पूरी रस्सी एक समय अपने हाथ मे आ सकेगी ।

५. या जैसे ३० चोरो मे से एक चोर थोडा भी अपना बन गया तो गया हुआ धन उसके द्वारा एक दिन पूरा-पूरा भी अपने हाथ मे आ सकेगा । इसी प्रकार यदि जीवन मे एक भी सामायिक चलती रही तो वह भविष्य मे आत्मा को बचा-लेने मे काम ही आयेगी ।

६ जिस प्रकार किसी रस्सो को वीच-वीच मे से कई स्थानो पर काट-दी हो और फिर भले ही गांठे देकर उसे जोड भी दी हो, तो-भी उसमे पहले वाला बल नही रहता, न उसका पहले वाला मूल्य ही रहता है, वैसे ही जीवन की पापी रस्सी को वीच मे सामायिके कर-कर के कई स्थानो से काट दी हो और फिर भले ही उसे जोड़ दी हो, तो भी उसमे पाप का बल अधिक नही रहता, न पाप का पहले वाला मूल्य (भाव) ही रहता है । इसलिए पाप का बल और मूल्य (भाव) घटाने के लिए भी सामायिक उपयोगी है । अर्थात् एक मनुष्य दिन-रात पाप ही पाप करे, वह सामायिक या अन्य कोई भी धर्म-क्रिया न करे, तो उसके पाप मे जो तीव्र भावना रहेगी, वैसी तीव्र भावना कोई मनुष्य दिन-रात मे केवल एक ही सामायिक करने वाला क्यो न हो, उसमे नही रहेगी क्योकि जैसे अणुव्रत-गुणव्रत के न होने से उसका प्रभाव सामायिक पर पड़ता है और सामायिक की शुद्धता मे मन्दता आती है, उसी प्रकार सामायिक का

प्रभाव २६ मुहूर्त में होने वाली पाप की भावना पर और पाप के पुरुषार्थ पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ता है और उसमे मन्दता आती है । इसलिए अणुव्रत-गुणव्रत धारण न हो सकने पर भी सामायिक अवश्य करनी चाहिए ।

प्र० : कुछ बड़े-बडे लोग सामायिक करके विकथा निन्दा करने लग जाते है । क्या यह ठीक है ?

उ० : आप बालक है, अभी अपना जीवन बनाओ ! दूसरों की आलोचना करना बडो का—गुरुओ का काम है । इसका विचार वे करेंगे । हा, आप यह अवश्य विचार रखो कि [१. हम भविष्य मे भी सामायिक शुद्ध करते रहेगे, २. दूसरो को भी शुद्ध सामायिक कराने वाले बनेंगे और ३. शुद्ध सामायिक करने वाले का अनुमोदन करके उत्साह बढाने वाले होंगे ।



पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले गति ४

नरकगति, तिर्यंचगति मनुष्यगति और देवगति ।

प्रश्नोत्तर

प्र० : गति किसे कहते हैं ?

उ० : ससारी जीवन मर कर जहा जाते हैं उसे गति कहते है ।

प्र० : नरक गति किसे कहते है ?

उ० : जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते हैं, वे मरकर नरक मे जाते हैं, जहा उन्हे घोर कष्टो का सामना करना पड़ता है । उसे ही नरकगति कहते हैं ।

प्र० : तिर्यंच गति किसे कहते है ?

उ० : जो जीव झूठ बोलते हैं, छल कपट करते हैं, व्यापार मे धोखा देते हैं, वे मर कर प्रायः पशु, पक्षी आदि की योनि मे ही जाते हैं । उसे तिर्यंच गति कहते हैं ।

प्र० : मनुष्य गति किसे कहते है ?

उ० : जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान् और दयालु होते हैं, वे मरकर प्राय. मनुष्य होते हैं । उसे ही मनुष्य गति कहते ।

प्र० : देव गति किसे कहते हैं ?

उ० : जो जीव अत्यन्त शुभ कर्म करने वाले हैं, वे मरकर देवता बनते हैं । उसे ही देव गति कहते हैं ।

दूसरे बोले जाति ५

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।

प्र० : जाति किसे कहते है ?

उ० : जिसमे जीव का जन्म हो अर्थात् समान इन्द्रिय वाले जीवो के समूह को जाति कहते हैं ।

जिसके सिर्फ एक स्पर्श इन्द्रिय ही हो, उसे एकेन्द्रिय जाति कहते हैं । जैसे मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव ।

जिन जीवो को स्पर्श और जिह्वा ये दो इन्द्रिया हो उसे द्वीन्द्रिय जाति कहते है । जैसे सीप, शख आदि । जिन जीवो के स्पर्श, जिह्वा और नासिका ये तीन इन्द्रिया हो, उसे त्रीन्द्रिय कहते है । जैसे–जू, लीक, चीटी, कुंथवा आदि ।

जिन जीवो के स्पर्श, जिह्वा, नासिका और नेत्र ये चार इन्द्रिया हो, उन्हे चतुरिन्द्रिय कहते हैं । जैसे मक्खी, मच्छर, भवरा आदि ।

जिन जीवो के स्पर्श, जिह्वा, नासिका, नेत्र और श्रोत्र ये पाचो इन्द्रिया हो, उसे पचेन्द्रिय जाति कहते है । जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, नारकीय तथा देवता आदि ।

तीसरे बोले काया ६

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।

प्र० . काय किसे कहते है ?

उ० . शरीर को काय कहते है । समूह को भी काय कहते है ।

जिन जीवो का शरीर पृथ्वी का है अर्थात् मिट्टी के जीव । अप्काय यानि पानी के जीव, अग्नि के जीव, हवा के जीव, वनस्पतिकाय—वृक्ष, लता, फल-फूल, शाक-भाजी अनाज के जीव । ये पाचो तरह के जीव स्थावर काय के जीव कहलाते है, जो चल-फिर नही सकते हैं । जो जीव सर्दी-गर्मी से बचने के लिये चल-फिर सकते है, उन्हे त्रसकाय कहते है । जैसे द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव ।

चौथे बोले इन्द्रियां ५

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ।

प्र० : इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ० · जिसके द्वारा जीव को ज्ञान होता है, उसे इन्द्रिय कहते है । जैसे आख से देखना, कान से श्रवण करना आदि ।

पांचवें बोले पर्याप्ति ६

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मन पर्याप्ति ।

प्र० . पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ० जीव उत्पन्न होते समय आहार आदि ग्रहण करने की जिन शक्तियो को पूर्ण करता है, उनको पर्याप्ति कहते हैं ।

छठे बोले प्राण १०

१. श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण २. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण ४ रसनेन्द्रिय बलप्राण ५. स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण ६. मनोबलप्राण ७ वचन बल-प्राण ८ काय बलप्राण ९ श्वासोश्वास बलप्राण १०. आयुष्य बलप्राण ।

प्र० : प्राण किसे कहते है ?

उ० जिसके सहारे से यह जीव जीता है और वियोग होनें पर मृत्यु को प्राप्त होता है । इन दस प्राणो मे मूल प्राण आयुष्यकर्म है । शेप प्राण इसके कार्य साधक है । यदि आयुष्य बलप्राण न रहे तो शेप सभी प्राण निष्फल हो जाते हैं ।

सातवें बोले शरीर ५

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कार्मण ।

प्र० · शरीर किसे कहते है ?

उ० जो समय-समय पर जीर्ण-शीर्ण होकर क्षीण होता जाता है उसे शरीर कहते हैं ।

औदारिक शरीर हाड-मास और रक्त आदि का बना हुआ होता है । यह मनुष्य और तिर्यंच को होता है । पाच स्थावरो का भी मूल शरीर औदारिक ही है ।

वैक्रिय शरीर देवता और नारकी के होता है । साधना करने से यह मनुष्य और पशुओ को भी हो सकता

है । इससे कई तरह के रूप परिवर्तन किये जा सकते हैं । इसकी उत्पत्ति तप और शुभ कर्मों से होती है। आहारक शरीर चौदह पूर्वधारी मुनियों को ही होता है । शका होने पर यह शरीर केवली भगवान् के पास जाकर उनका समाधान करने मे सहायक होता है। जो आहार किये हुए को पचाता है—हजम करता है, उसे तेजस् शरीर कहते है ।

आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते है। जहा पर आठो ही कर्मों के परमाणु रहते हैं, उस समूह को कार्मण शरीर कहते हैं ।

आठवें बोले योग १५

१. सत्य मनोयोग २ असत्य मनोयोग ३ मिश्र मनोयोग ४. व्यवहार मनोयोग ५. सत्य भाषा ६. असत्य भाषा ७ मिश्र भाषा ८ व्यवहार भाषा ९ औदारिक १० औदारिक मिश्र ११ वैक्रिय १२. वैक्रिय मिश्र १३ आहारक १४ आहारक मिश्र १५ कार्मण ।

प्र० योग किसे कहते है ?

उ० . जीव नाम कर्म के योग से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा, काय—वर्गणा आदि से कर्म ग्रहण करे व क्षय करे उसे भाव योग कहते है । इसी भाव योग के निमित्त से आत्म-प्रदेश के चचल होने को (परिस्पदन) द्रव्य योग कहते हैं ।

नौवें बोले उपयोग १२

पाच ज्ञान - मति, श्रुति, अवधि, मन पर्याय और केवलज्ञान ।

तीन अज्ञान—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभगज्ञान ।
चार दर्शन—चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन और केवलदर्शन ।

प्र० : उपयोग किसे कहते है ?

उ० : उपयोग अर्थात् ज्ञान जो कि आत्मा का मुख्य लक्षण है । कोई भी आत्मा ज्ञान—शून्य नही होता है ।

दसवें बोले कर्म ८

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय ।

प्र० : कर्म किसे कहते है ?

उ० : जो किये जाय, उन्हे कर्म कहते है । आत्मा के साथ सूक्ष्म परमाणुओ का सम्बन्ध हो जाना कर्म कहलाता है । जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढाकता है, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

जो आत्मा की देखने की शक्ति को ढाकता है, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

जिस कर्म के फल से सुख-दु ख भोगा जाता है, उसे वेदनीय कर्म कहते है ।

जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो पाप मे प्रवृत्त हो, क्रोध, मान, माया और लोभ मे समय व्यतीत करे उसे मोहनीय कर्म कहते है ।

जिस कर्म के प्रभाव से शरीर आदि के अवयव बनते है तथा जीव शुभ नाम और अशुभ नाम के द्वारा अपने नाम को उत्पन्न करता है, उसे नाम कर्म कहते है ।

जिस कर्म से जीव अपना आयुष्य बाधता है अर्थात् नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता की आयु जिस कर्म

से उत्पन्न की जाती है, उसे आयुष्य कर्म कहते है ।
जिस कर्म से जीव ऊच-नीच जन्मो को धारण करता हैं, उसे गोत्र कर्म कहते हैं ।
जिस कर्म से कार्यों मे विघ्न उपस्थित हो जाते है, उसे अन्तराय कर्म कहते है ।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान १४

१ मिथ्यात्व गुणस्थान २ सास्वादन गुणस्थान ३. मिश्र गुणस्थान ४ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ५. देशविरति श्रावक गुणस्थान ६, प्रमादी साधु गुणस्थान ७ अप्रमादी साधु गुणस्थान ८ नियट्टि वादर गुणस्थान ९ अनियट्टि बादर गुणस्थान १० सूक्ष्म सपराय गुणस्थान ११ उपशात मोहनीय गुणस्थान १२. क्षीण मोहनीय गुणस्थान १३. सयोगी केवली गुणस्थान १४. अयोगी केवली गुणस्थान ।

प्र० : जीवो को क्रमश उन्नत अवस्थाओ को जैन शास्त्र मे क्या कहते है ?

उ० : गुणस्थान ।

प्र० . गुणस्थान की परिभाषा क्या है ?

उ० : मोह और योग (मन, वचन और काय की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र रूप आत्मा के गुणो मे जो तरतम भाव आता है, उसको गुणस्थान कहते है ।

बारहवें बोले पांच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द ।

मे व्याप्त नही है । वे आख से या यत्र की सहायता से देखे जा सकते है । उन पर शस्त्र का प्रभाव पडता है । वे दूसरो के लिये भी अनुकूल-प्रतिकूल होते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय आदि पाचो स्थावरो मे वे होते हैं । सचित्त मिट्टी, पानी, लीलोतरी आदि के रूप मे जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते हैं, वे वादर एकेन्द्रिय जीव है ।

प्र० : पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उ० : जिस जीव की जितनी पर्याप्तिया कही गई है, उन सभी पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है । एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोछ्वास मे चार पर्याप्तियां होती है । जव जीव इनको पूरा कर लेता है, तव वह पर्याप्त कहलाता है । जव तक वह आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीनो को पूर्ण कर श्वासोछ्वास पर्याप्ति को पूरा नही किया होता है, तव तक वह अपर्याप्त कहलाता है । ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवो को भी जानना ।

प्र० : सज्ञी और असज्ञी किसे कहते है ?

उ० : जो मनवाले जीव है उनको सज्ञी कहते है और जिनका मन नही है, उनको असज्ञी कहते है । मन पचेन्द्रियों के ही होता है । इसलिए जिन पचेन्द्रिय जीवो के मन हैं, वे सज्ञी कहलाते हैं। जैसे गर्भज मनुष्य और तिर्यंच औपपातिक देव या नारकीय जीव। जिन पंचेन्द्रिय जीवो के मन नही हैं, वे असज्ञी कहलाते है । जैसे

समूर्च्छिम मनुष्यादि के जीव ।

अजीव के १४ भेद :

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—स्कंध, देश और प्रदेश ।
अधर्मास्तिकाय के तीन भेद— " " " "
आकाशास्तिकाय के तीन भेद—" " " "
और दसवा काल । ये दस भेद अरूपी अजीव के होते है । रूपी पुद्गल के चार भेद है-स्कध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल । ये १४ भेद अजीव के होते है ।

प्र० : धर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

उ० : जीव और पुद्गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करते हैं उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है । जैसे मछली के हलन-चलन मे पानी सहायक होता है । यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नही देता है, परन्तु चलायमान पदार्थ का सहायक होता है ।

प्र० : अधर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

उ० : जो द्रव्य जीव और पुद्गल के स्थिर होने मे मदद देता है, उसका नाम अधर्मास्तिकाय है । जैसे थके हुए पथिक को ठहरने मे छाया उपकारक होती है । यह द्रव्य स्थिर होने के लिए विवश नही करता, परन्तु स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक हो जाता है ।

प्र० : आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ० जो सब द्रव्यो को जगह देता है, उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं ? जैसे दूध शक्कर को और पानी नमक को

चक्षुरिन्द्रिय के पाच विपय-काला, नीला, लाल, पीला और सफेद ।

घ्राणेन्द्रिय के दो विपय सुरभिगध, दुरभिगध ।

रसनेन्द्रिय के पाच विषय—तीखा, कडवा, कषायला खट्टा और मीठा ।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय—कर्कश, कोमल, लघु, गुरु, उष्ण, शीत, रुक्ष और स्निग्ध ।

तेरहवें बोले मिथ्यात्व के १० भेद :

१ जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २. अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ३ धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व ४ अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ५ साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ६ असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व ७ संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ८. मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व ९. आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, १०. आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व ।

प्र० : मिथ्यात्व किसे कहते है ।

उ० : सत्य वस्तु को असत्य और असत्य को सत्य जानना मिथ्यात्व है ।

चौदहवें बोले छोटी नवतत्त्व के ११५ भेद :

नव तत्त्वो के नाम—१ जीव-तत्त्व, २ अजीव तत्त्व, ३. पुण्य तत्त्व, ४ पाप तत्त्व, ५ आस्रव तत्त्व, ६ सवर तत्त्व, ७ निर्जरा तत्त्व, ८ बध तत्त्व, ९ मोक्ष तत्त्व ।

नव तत्वो के भेद—जीव के १४, अजीव के १४, पुण्य, के ६, पाप के १८, आस्रव के २०, संवर के २०, निर्जरा के १२, वंध के ४, मोक्ष के ४, कुल मिलाकर ११५ भेद हुए।

जीव के १४ भेद :

सूक्ष्म एकेन्द्रिय	के	दो	भेद	अपर्याप्त और	पर्याप्त
वादर एकेन्द्रिय	के	"	"	"	"
द्वीन्द्रिय	के	"	"	"	"
त्रीन्द्रिय	के	"	"	"	"
चतुरिन्द्रिय	के	"	"	"	"
असन्नी पचेन्द्रिय	के	"	"	"	"
सन्नी पंचेन्द्रिय	के	"	"	"	"

प्र० : सूक्ष्म जीव किसे कहते है ?

उ० : सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म शरीरधारी जीव है, उनको ही सूक्ष्म जीव कहते हैं। वे जीव सारे लोक मे व्याप्त हैं। उनकी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती है। उनको कोई किसी भी शस्त्र से मार नही सकता। आग उन्हे जला नही सकती और न पानी उन्हे गला सकता है। न वे किसी को कष्ट ही पहुचाते हैं। केवलज्ञानी के सिवाय अन्य कोई उन्हे देख नही सकता है। पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि पांचो एकेन्द्रियों मे वे होते हैं।

प्र० : बादर एकेन्द्रिय किसे कहते है ?

उ० : बादर नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीरधारी जीव हैं उनको बादर एकेन्द्रिय कहते हैं। वे सारे लोक

मे व्याप्त नही है । वे आख से या यत्र की सहायता से देखे जा सकते है । उन पर शस्त्र का प्रभाव पडता है । वे दूसरो के लिये भी अनुकूल-प्रतिकूल होते है । पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय आदि पाचो स्थावरों मे वे होते है । सचित्त मिट्टी, पानी, लीलोतरी आदि के रूप मे जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते है, वे बादर एकेन्द्रिय जीव है ।

प्र० : पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उ० : जिस जीव की जितनी पर्याप्तिया कही गई है, उन सभी पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है । एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोछ्वास मे चार पर्याप्तिया होती हैं । जब जीव इनको पूरा कर लेता है, तब वह पर्याप्त कहलाता है । जव तक वह आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीनो को पूर्ण कर श्वासोछ्वास पर्याप्ति को पूरा नही किया होता है, तब तक वह अपर्याप्त कहलाता है । ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवो को भी जानना ।

प्र० : सज्ञी और असंज्ञी किसे कहते है ?

उ० : जो मनवाले जीव है उनको सज्ञी कहते है और जिनका मन नही है, उनको असज्ञी कहते हैं । मन पचेन्द्रियों के ही होता है । इसलिए जिन पचेन्द्रिय जीवो के मन है, वे सज्ञी कहलाते हैं । जैसे गर्भज मनुष्य और तिर्यंच औपपातिक देव या नारकीय जीव । जिन पंचेन्द्रिय जीवो के मन नही है, वे असज्ञी कहलाते हैं । जैसे

सर्मूच्छिम मनुष्यादि के जीव ।

अजीव के १४ भेद :

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—स्कध, देश और प्रदेश ।
अधर्मास्तिकाय के तीन भेद— " " " "
आकाशास्तिकाय के तीन भेद—" " " "
और दसवा काल । ये दस भेद अरूपी अजीव के होते हैं । रूपी पुद्गल के चार भेद है—स्कध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल । ये १४ भेद अजीव के होते हैं ।

प्र० : धर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

उ० : जीव और पुद्गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करते हैं उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है । जैसे मछली के हलन-चलन मे पानी सहायक होता है । यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नही देता है, परन्तु चलायमान पदार्थ का सहायक होता है ।

प्र० : अधर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

उ० : जो द्रव्य जीव और पुद्गल के स्थिर होने मे मदद देता है, उसका नाम अधर्मास्तिकाय है । जैसे थके हुए पथिक को ठहरने मे छाया उपकारक होती है । यह द्रव्य स्थिर होने के लिए विवश नही करता, परन्तु स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक हो जाता है ।

प्र० : आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ० : जो सब द्रव्यो को जगह देता है, उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं ? जैसे दूध शक्कर को और पानी नमक को

स्थान देता है। इसके दो भेद होते हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश मे सभी द्रव्य रहे हुए है जबकि अलोकाकाश मे आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं है क्योकि हलन-चलन मे सहायता करने वाला धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित है।

प्र० काल द्रव्य किसे कहते है ?

उ० . नये-पुराने, छोटे-बडे आदि की पहिचान जिस द्रव्य से होती है, उसे काल द्रव्य कहते है। समय, आवलिका मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते है।

प्र० इस द्रव्य को आस्तिकाय क्यो नही कहा जाता है ?

उ० जिस द्रव्य के भेद हो सकते है, उसे ही आस्तिकाय कहा जाता है। काल द्रव्य एक प्रदेश रूप ही होता है। इसके प्रदेश कभी भी एकत्रित होकर राशि रूप नही बनते है। अत इसे कालास्तिकाय नही कहा जाता है।

प्र० : पुद्गलास्तिकाय किसे कहते है।

उ० . ससार मे हम जिन अजीव पदार्थो को देखते है, वे सब पुद्गल है। सडना-गलना बिखरना और एकत्रित होना, ये सव क्रियाए पुद्गलो मे होती है। जब तक जीव के साथ इसका सम्बन्ध बना रहता है, तब तक इनके साथ सचित्त का व्यवहार किया है। जीव से सवध छूटते ही ये अपने असली स्वरूप मे अचित्त

रह जाते हैं, जैसे निर्जीव शरीर । यह द्रव्य ससारी जीवो की प्रवृत्तियों मे विशेष सहायक होता है ।

प्र० : प्रदेश किसे कहते हैं ?

उ० · प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो और स्कध के साथ अवयव रूप से मिला हुआ हो ।
अनेक प्रदेश मिल कर देश कहलाते है और अनेक देशों का समूह स्कन्ध कहलाता है । देश भी स्कन्ध से मिले हुए ही होते है, स्वतन्त्र नही रहते ।

प्र० · परमाणु किसे कहते है ?

उ० . अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, परमाणु कहते है । परमाणु और प्रदेश में यही अन्तर है कि प्रदेश अपने देश और स्कध से मिले हुए होते हैं जवकि परमाणु उससे पृथक् होता है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक् नही हो सकते है । अत इन द्रव्यो मे परमाणु नही कहा गया है । रूपी अजीव द्रव्य मे ही परमाणु होते हैं । इनको हम आंख से या किसी यत्र के सहारे से भी नही देख सकते हैं ।

पुण्य के ९ भेद

१ अन्न पुण्य—अन्न देने से पुण्य होता है ।

२ पान पुण्य—पानी देने से पुण्य होता है ।

३ लयन पुण्य—जगह स्थान देने से पुण्य होता है ।

४ शयन पुण्य—शय्या, पाट, पाटला आदि देने से पुण्य होता है।

५ वस्त्र पुण्य—वस्त्र देने से पुण्य होता है।

६ मन पुण्य—शुभ मन रखने से पुण्य होता है।

७ वचन पुण्य—शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है।

८ काय पुण्य—शरीर द्वारा सेवा तथा विनय करने से पुण्य होता है।

९ नमस्कार पुण्य—गुणवान को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

प्र० पुण्य किसे कहते है ?

उ० जो आत्मा को पवित्र करे और जिससे प्राणियो को सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य कहते है।

पाप के १८ भेद

१ प्राणातिपात—जीवो की हिसा करना।
२ मृषावाद —झूठ बोलना।
३ अदत्तादान —चोरी करना।
४ मैथुन —कुशील सेवन करना।
५ परिग्रह —धन-सग्रह की लालसा करना।
६ क्रोध —रोप करना।
७ मान —अहकार करना।
८ माया —छल-कपट करना।
९ लोभ —लालच, तृष्णा बढाना।
१० राग —स्नेह, प्रीति करना।
११ द्वेप —वैर।

१२ कलह —क्लेश करना ।
१३ अभ्याख्यान—झूठा कलक चढाना ।
१४ पैशुन्य —चुगली करना ।
१५ पर-परिवाद—दूसरो की निन्दा करना ।
१६ रति–अरति—मनोज्ञ वस्तुओ पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओ पर नाराज होना ।
१७ माया-मृपावाद–छल कपट के साथ झूठ वोलना ।
१८ मिथ्यादर्शन शल्य—कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना ।

आस्रव के २० भेद

१ मिथ्यात्व—असत्य विचार करे सो आस्रव ।
२ अव्रत – प्रत्याख्यान नही करे सो आस्रव ।
३ प्रमाद—पाच प्रमाद का सेवन करे, सो आस्रव ।
४ कषाय – क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करे सो आस्रव ।
५ अशुभयोग—मन, वचन और काया द्वारा अशुभ प्रवृत्तियां करे सो आस्रव ।
६ प्राणातिपात – जीव हिंसा करे सो आस्रव ।
७ मृपावाद—झूठ वोले सो आस्रव ।
८ अदत्तादान—चोरी करे सो आस्रव ।
९ मैथुन—कुशील सेवे सो आस्रव ।
१० परिग्रह – धन सग्रह करे सो आस्रव ।
११ श्रोत्रेन्द्रिय—वश मे नही रखे सो आस्रव ।
१२ चक्षुरिन्द्रिय— " "

१३ घ्राणेन्द्रिय—वश मे नही रखे सो आस्रव ।
१४ रसनेन्द्रिय— ” ”
१५ स्पर्शनेन्द्रिय—” ”
१६ मन— ” ”
१७ वचन— ” ”
१८ काया— ” ”
१९ भंड—उपकरण अयतना से लेवे और रखे सो आस्रव ।
२० सूई कुशाग्रमात्र कोई भी वस्तु असावधानी से लेवे और रखे सो आस्रव ।

प्र० . आस्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ० · जिस प्रकार तालाब मे नाली के द्वारा पानी आता है, उसी प्रकार जिन कारणो से आत्मा मे कर्म आते है उन कारणो को जैन धर्म मे आस्रव कहा जाता है। पांच इन्द्रियो के भोग-विलास मे लगे रहना, हिंसा, असत्य आदि का आचरण करना, मन, वचन और शरीर को वश मे न रखना, ये सब आस्रव कहलाते है।

संवर के २० भेद

१ समकित संवर ।
२ व्रत पच्चक्खाण करे, सो सवर ।
३ प्रमाद नही करे, सो सवर ।
४ कषाय ” ”
५ शुभयोग प्रवर्तावे सो सवर ।
६ प्राणातिपात, जीव हिंसा न करे सो, सवर ।
७ मृषावाद—झूठ नही बोले, सो सवर ।
८ अदत्तादान—चोरी नही करे, सो संवर ।

९ मैथुन—कुशील नही सेवे, सो संवर ।
१० परिग्रह—मूर्च्छा संग्रह नही रखे, सो सवर ।
११ श्रोत्रेन्द्रिय—वश मे करे, सो संवर ।
१२ चक्षुरिन्द्रिय—" "
१३ घ्राणेन्द्रिय —" "
१४ रसनेन्द्रिय —" "
१५ स्पर्शनेन्द्रिय—" "
१६ मन —" "
१७ वचन —" "
१८ काया —" "
१९ भड—उपकरण यतना से लेवे और रखे, सो सवर ।
२० सूई—कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतना से रखे, सो सवर ।

प्र० : सवर किसे कहते है ?

उ० : आत्मा मे कर्ममल को लगाने वाले कारणो को रोक देना सवर है । आस्रव से कर्म आते है तो सवर से रोके जाते है । पाच इन्द्रियों को वश मे रखना, अहिंसा, सत्य आदि का आचरण करना, मन, वचन और शरीर को सयम मे रखना आदि सवर है ।

निर्जरा के १२ भेद

१ अनशन (उपवास करना) २. ऊनोदरी (कम खाना) ३. भिक्षा (साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मागना) ४ रस—परित्याग (घृतादि का त्याग) ५. कायक्लेश (आसनादि लगाना) ६ प्रतिसलीनता (इन्द्रियो को वश मे करना) ७ प्रायश्चित्त (दण्ड

लेना) ८. विनय (विनय करना) ९. वैयावृत्य (सेवा करना) १०. स्वाध्याय (पढाना पढना) ११. ध्यान (योगाभ्यास करना) १२. कायोत्सर्ग (काया को ध्यान मे स्थिर करना)।

प्र० : निर्जरा किसे कहते है ?

उ० : आत्मा पर लगे हुए कर्मो को एक-एक कर नष्ट करना निर्जरा है। उपवास करना, भूख से कम खाना स्वादिष्ट पदार्थो का त्याग करना, दूसरो की सेवा करना, ज्ञान की उपासना करना आदि से कर्मो की निर्जरा होती है।

बंध के ४ भेद

१. प्रकृति वध २ स्थिति वध ३. अनुभाग वध ४. प्रदेश वध।

प्र० : वध तत्त्व किसे कहते है ?

उ० : आत्मा पर लगे हुए कर्मो को बंध कहते है ये कर्म ज्ञानावरणीय आदि ८ प्रकार के होते है इन्ही से आत्मा ससार मे भटकती रहती है।

आठ कर्मो के स्वभाव को प्रकृति वध कहते है। आठ कर्मो के काल परिमाण को स्थिति बध कहते हैं। आठ कर्मो के तीव्र मदादि रस को अनुभाग वध कहते है। कर्म पुद्गलों के दल का आत्मा के साथ वध होना प्रदेश वंध कहा जाता है।

प्रकृति वध और प्रदेश वध का कारण योग है और स्थिति तथा अनुभाग वध कपाय से होते हैं।

मोक्ष के ४ भेद

१ सम्यक् दर्शन २ सम्यक् ज्ञान ३ सम्यक् चारित्र और ४. सम्यक् तप ।

प्र० : सम्यक् दर्शन किसे कहते है ?

उ० : जिनेश्वर भगवान् के वचनो पर शुद्ध श्रद्धा रखना सम्यक् दर्शन है ।

प्र० . सम्यक् ज्ञान किसे कहते है ?

उ० . श्रद्धापूर्वक सच्चे ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते है ।

प्र० · सम्यक् चारित्र किसे कहते हैं ?

उ० · दर्शन और ज्ञान पूर्वक सत् आचरण को सम्यक् चारित्र कहते है ।

प्र० : सम्यक् तप किसे कहते है ?

उ० . आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना सम्यक् तप है ।

प्र० : मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ० . जब आत्मा सर्वथा कर्म रहित होकर जन्म-मरण के बधन से मुक्त हो जाती है तो उसे मोक्ष कहा जाता है । मोक्ष दशा मे न शरीर रहता है और न शरीर के काम आने वाले ससारी भोग ही रहते है । उस समय यही जीव आत्मा परमात्मा बन जाता है । निर्जरा मे कर्मों का नाश अधूरा रहता है, जबकि मोक्ष मे कर्मो का पूर्णतया नाश हो जाता है । यही इन दोनो मे भेद है ।

पन्द्रहवें बोले आत्मा ८

१. द्रव्य आत्मा — भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनो कालवर्ती असंख्य प्रदेशी, द्रव्य रूप आत्मा ।

२. कषायात्मा — क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय युक्त आत्मा ।

३. योगात्मा — मन, वचन और काया रूप योग युक्त आत्मा ।

४. उपयोगात्मा — पाच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन रूप उपयोग विशिष्ट आत्मा ।

५ ज्ञानात्मा — मतिज्ञानादि रूप ज्ञान युक्त आत्मा ।

६ दर्शनात्मा — चक्षुदर्शनादि रूप दर्शन युक्त आत्मा ।

७. चारित्रात्मा — सामायिक चारित्र आदि रूप चारित्र विशिष्ट आत्मा ।

८. वीर्य आत्मा — उत्थान रूप वीर्य युक्त आत्मा ।

सोलहवें बोले दण्डक २४

सात नारकी का एक दंडक । सात नारकी के नाम॰ धम्मा, वशा शीला, अजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई ।

इनके गोत्र—रत्न-प्रभा, शर्करा–प्रभा, बालुका–प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रभा, तम -प्रभा और तमस्तम -प्रभा ।

दस भवनपतियो के दस दडक । उनके नाम-१. असुर कुमार २. नागकुमार ३. सुवर्णकुमार ४ विद्युतकुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. पवनकुमार १०. स्तनितकुमार ।

पाच स्थावरो के पाँच दंडक। पाँच स्थावरो के नाम पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दडक—तीन विकलेन्द्रियो के नाम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ।

तिर्यंच पचेन्द्रिय का एक दडक, मनुष्य का एक दंडक वाणव्यन्तर देवता का एक दडक, ज्योतिपी देवता का एक दंडक, वैमानिक देवता का एक दडक। ये सब चौवीस दडक हुए (१+१०+५+३+१+१+१+१+१=२४) ।

प्र० . दडक किसे कहते हैं ।

उ० अपने किये गये कर्मो का जहा दड भोगा जाता है, वे स्थान दडक कहे जाते है ।

प्र० विकलेन्द्रिय किसे कहते है ?

उ० . जिनको पाचो इन्द्रिया पूरी न मिली हों। कही-कही एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया है ।

प्र० तिर्यंच पंचेन्द्रिय किसे कहते है ?

उ० : तिर्यंच गति वाले ऐसे जीव, जिन्हे पाचो इन्द्रियां पूरी मिली हो। जैसे मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नेवला आदि ।

सत्रहवें बोले लेश्या ६

१ कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३ कापोत लेश्या ४ तेजो लेश्या ५ पद्म लेश्या ६ शुक्ल लेश्या ।

प्र० लेश्या किसे कहते हैं ?

उ० · आत्मा के शुभाशुभ परिणामो को लेश्या कहते है ।

छह लेश्या का दृष्टान्त :

यदि जामुन के वृक्ष पर फल लगे हुए हो और उनको खाने की इच्छा हो तो कृष्ण लेश्या वाला वृक्ष को जड काटकर फल खाना चाहेगा । नील लेश्या वाला वडी-वडी शाखाये काटकर फल खाना चाहेगा,कापोत लेश्या वाला छोटी-छोटी शाखाए काट कर फल खाना चाहेगा । तेजोलेश्या वाला फलो के गुच्छे तोडकर फल खाना चाहेगा । पद्म लेश्या वाला गुच्छो से फल तोडकर खाना चाहेगा । शुक्ल लेश्या वाला धरती पर पडे हुए फल खाकर ही सतोष कर लेगा ।

इन छह लेश्याओ मे पहले की तीन अशुभ और अधर्म लेश्याए है । इन लेश्याओ मे अशुभ गति का वध पड़ता है शेप तीन लेश्याये शुभ व धर्म-लेश्याये है । इन लेश्याओ मे शुभ गति का बध पडता है ।

एकेन्द्रिय भवनपति और वाणव्यन्तर मे पहले की चार लेश्याये होती है । विकलेन्द्रिय मे पहले की तीन, ज्योतिष मे तेजोलेश्या मिलती है । वैमानिक मे पिछली तीन मिलती है । तिर्यच पचेन्द्रिय तथा मनुष्य मे छहो लेश्याये मिलती हैं ।

अठारहवें बोले दृष्टि ३

१ सम्यक् दृष्टि २ मिथ्या दृष्टि ३ मिश्र दृष्टि ।

उन्नीसवें बोले ध्यान ४

१ आर्त ध्यान २ रौद्र ध्यान ३ धर्म ध्यान और ४. शुक्ल ध्यान ।

प्र० ध्यान किसे कहते है ।

उ० : मन, वचन और काया को एकाग्र करना ध्यान है।
पहले के दोनो ध्यान अशुभ है और शेष दोनो शुभ।

बीसवें बोले षट्द्रव्यों के ३० भेद :

धर्मास्तिकाय के ५ भेद

धर्मास्तिकाय को पाच बोलो से जाना जाता है—१. द्रव्य से एकद्रव्य २. क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३. काल से—आदि अत रहित। ४ भाव से—वर्ण, गध, रस और स्पर्श रहित, अर्थात् अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और असख्यात प्रदेशी है। ५ गुण से—चलन गुण। पानी मे मछली का दृष्टान्त। जैसे पानी के आधार से मछली चलती है, वैसे ही जीव और पुद्गल दोनो धर्मास्तिकाय के आधार से चलते हैं।

२. अधर्मास्तिकाय के ५ भेद

अधर्मास्तिकाय को ५ बोलो से जाना जाता है। १. द्रव्य से—एक द्रव्य २ क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण। ३. काल से आदि अत रहित। ४ भाव से—वर्ण नही, गध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और असख्यात प्रदेशी है। ५ गुण से स्थिर गुण। थके हुए पथिक को छाया का दृष्टान्त। जैसे थके हुए पथिक को छाया का आधार है, उसी तरह ठहरे हुए जीव और पुद्गल को अधर्मास्तिकाय का आधार है।

३ आकाशास्तिकाय के ५ भेद

आकाशास्तिकाय को ५ बोलो से जाना जाता है। १. द्रव्य से—एक द्रव्य। २ क्षेत्र से—लोकालोक प्रमाण।

३ काल से—आदि अत रहित । ४. भाव से–वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित । अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है । ५ गुण से–स्थान देने का गुण । भीत मे खूटी का दृष्टान्त । जैसे खूंटी को भीत स्थान देने मे सहायक है, वैसे ही धर्मास्तिकायादि पाच द्रव्यो को आकाशास्तिकाय स्थान देने मे सहायक है ।

४ काल के पांच भेद

काल द्रव्य को पाच वोलो से जाना जाता है । १. द्रव्य से—अनत द्रव्य । २ क्षेत्र से—अढाई द्वीप प्रमाण । ३ काल से—आदि अत रहित । ४ भाव से—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित । अरूपी, शाश्वत और अप्रदेशी है । ५. गुण से वर्तन गुण । नये को पुराना और पुराने को नष्ट करे । कपडे को कैंची का दृष्टात । प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नही है ।

५. जीवास्तिकाय के पांच भेद

जीवास्तिकाय को पाच बोलो से जाना जाता है । १ द्रव्य से–अनत जीव द्रव्य । २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण । ३ काल से–आदि अत रहित । ४. भाव से—वर्ण, गध, रस और स्पर्श रहित, अरूपी, शाश्वत, सर्वव्यापी और अनत प्रदेशी है । एक आत्मा आश्रित शरीरव्यापी एवं असख्यात प्रदेशी है । ५ गुण से—उपयोग गुण । चन्द्रमा की कला का दृष्टात । जैसे आवरण के कारण चन्द्रमा न्यूनाधिक प्रकाशित है वैसे ही ज्ञानावरणीयादि के कारण आत्मा का उपयोग गुण न्यूनाधिक प्रकट होता है ।

६ पुद्गलास्तिकाय के पांच भेद

पुद्गलास्तिकाय को पांच वोलो से जाना जाता है। १. द्रव्य से—अनंत द्रव्य २. क्षेत्र से—सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३ काल से—आदि अंत रहित। ४ भाव से—रूपी अर्थात् वर्ण, गध, रस और स्पर्श युक्त। अजीव, शाश्वत और संख्यात असंख्यात एव अनत प्रदेशी है। ५ गुण से-पूरण गलन, सडन और विध्वसन गुण। वादल का दृष्टात। वादल की तरह पुद्गल भी मिलते और विखरते है।

प्र० : द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ० : भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनो काल मे रहने वाला गुण और पर्यायो का जो आधार होता है, उसे द्रव्य कहते है।

इक्कीसवें बोले राशि २

१. जीव राशि २. अजीव राशि।

प्र० राशि किसे कहते हैं ?

उ० : समूह, वर्ग या ढेर को राशि कहते है। जीव राशि के ५६३ भेद और अजीव राशि के ५६० भेद होते है।

बाईसवें बोले श्रावक के १२ व्रत

१. पहले अहिंसा व्रत मे श्रावक त्रस जीव को मारे नही, मरावे नही, मन, वचन और काया से।

२. दूसरे सत्यव्रत मे श्रावक मोटा (स्थूल) भूठ वोले नही, वोलावे नही मन, वचन और काया से।

३ तीसरे अचौर्य व्रत मे श्रावक मोटी चोरी करे नही, करावे नही, मन वचन और काया से ।

४. चौथे परदार-विवर्जन एव स्वदार-सतोष व्रत मे श्रावक पर-स्त्री सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री की मर्यादा करे ।

५. पाचवा परिग्रह परिमाण व्रत मे श्रावक परिग्रह की मर्यादा करे ।

६ छठे दिशा परिमाण व्रत मे श्रावक छहो—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊची-नीची दिशाओ की मर्यादा करे ।

७ सातवे उपभोग परिभोग परिमाण व्रत मे श्रावक छब्वीस वोल की मर्यादा करे और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करे ।

९ नौवे सामायिक व्रत मे श्रावक प्रतिदिन शुद्ध-सामायिक करे ।

१० दसवे देशावकाशिक व्रत मे श्रावक देशावकाशिक पौषध करे, दया करे, सवर करे, चौदह नियम चितारे ।

११. ग्यारहवे पौपधोपवास व्रत मे श्रावक प्रतिपूर्ण पौषध करे ।

१२ वारहवे अतिथि सविभाग व्रत मे श्रावक प्रति-दिन चौदह प्रकार की वस्तुओ मे से जो निर्दोप हो, देवे ।

तेईसवें बोले साधुजी के पांच महाव्रत

१ पहले महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार

से जीव हिंसा करे नही, करावे नही और करते हुए को भला जाने नही, मन, वशन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

२ दूसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ वोले नही, बोलावे नही, बोलते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

३ तीसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से चोरी करे नही, करावे नही, करते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

४ चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नही, सेवावे नही, सेवते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

५ पाचवे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखे नही, रखावे नही, रखते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

प्र० व्रत और महाव्रत में क्या अन्तर है ?

उ० गृहस्थ जीवन की मर्यादा में रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अहिसादि बारह अणुव्रतो का पालन व्रत कहलाता है। घर-बार को भी छोडकर सर्वथा निर्दोष रूप से अहिंसादि व्रतो का पूर्ण पालन करना महाव्रत कहलाता है। श्रावक अणुव्रती कहलाता है और पच महाव्रतधारी साधु या साध्वी महाव्रती होते हैं। सक्षेप मे कहा जाय तो दोषो की पूर्ण निवृत्ति को महाव्रत कहते हैं और आशिक निवृत्ति को अणुव्रत या देश विरति कहते हैं।

चौबीसवें बोले भांगा ४९ का जाणपणा

११ आक एक ग्यारह का भागा उपजे नौ। एक करण एक योग से कहना।

१ करूंगा नही मन से, २. करूंगा नही वचन से, ३ करूंगा नही काया से, ४ कराऊंगा नही मन से, ५. कराऊंगा नही वचन से, ६ कराऊंगा नही काया से, ७ अनुमोदूंगा नही मन से, ८. अनुमोदूंगा नही वचन से, ९. अनुमोदूंगा नही काया से।

१२ आक एक बारह का भागा उपजे नौ। एक करण दो योग से कहना।

१ करूंगा नही मन से वचन से।
२ करूंगा नही मन से काया से।
३ करूंगा नही वचन से, काया से।
४. कराऊंगा नही मन से, वचन से।
५ कराऊंगा नही मन से, काया से।
६ कराऊंगा नही वचन से, काया से।
७ अनुमोदूंगा नही मन से, वचन से।
८ अनुमोदूंगा नही मन से, काया से।
९ अनुमोदूंगा नही वचन से, काया से।

१३ आक एक तेरह का भागा उपजे तीन। एक करण तीन योग से कहना।

१ करूंगा नही मन से, वचन से, काया से।
२. कराऊंगा नही " " "
३. अनुमोदूंगा नही " " "

२१ आंक एक इक्कीस का भागा उपजे नौ। दो करण एक योग से कहना।

१. करूंगा नही, कराऊंगा नही मन से।
२ " " वचन से।
३ " " काया से।
४ करूंगा नही, अनुमोदूंगा नही मन से।
५ " " वचन से।
६ " " काया से।
७. कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही मन से।
८ " " वचन से।
९ " " काया से।

२२ आक एक बाईस का भागा उपजे नौ। दो करण दो योग से कहना।

१ करूगा नही, कराऊगा नही, मन से, वचन से।
२ " " मन से, काया से।
३ " " वचन से, काया से।
४ करूगा नही, अनमोदूंगा नही, मन से वचन से।
५ " " मन से, काया से।
६. " " वचन से, काया से।
७ कराऊगा नही " मन से, वचन से।
८ " " मन से, काया से।
९ " " वचन से काया से।

२३ आक एक तेईस का भागा उपजे तीन। दो करण तीन योग से कहना।

१ करूंगा नही कराऊंगा नही मन से,वचन से,काया से।
२. " अनुमोदूंगा नही " " "
३. कराऊगा नही " " " "

३१ आक एक इकतीस का भागा उपजे तीन। तीन करण एक योग से कहना।

१ करूगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही मन से।
२ " " " " वचन से।
३. " " " " काया से।

३२ आक एक बत्तीस का भागा उपजे तीन। तीन करण दो योग से कहना।

१ करूगा नही कराऊगा नही अनुमोदूंगा नही मन से,वचन से
२ " " " मन से, काया से।
३ " " " " वचन से काया से।

३३ आक तैतीस का भागा उपजे एक। तीन करण तीन योग से कहना।

१ करूगा नही, कराऊगा नही अनुमोदूगा नही मन से, वचन मे काया से।

यंत्र

आक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३	अक९
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३	
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३	
भागा	९	९	३	९	९	३	३	३	१	

पच्चीसवें बोले चारित्र ५   भागे-४९

१ सामायिक चारित्र २ छेदोपस्थापनीय चारित्र, ३

परिहार विशुद्ध चारित्र ४ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र ५ यथाख्यात चारित्र ।

प्र० · चारित्र किसे कहते हैं ?

उ० जिसके पालन से कर्मो का आना रुके और आत्मा शुद्ध बने, उसे चारित्र कहते हैं ।



पाठ १९

कल्प विभाग (१. पंच परमेष्ठी स्तवन २ जिनवाणी ३ तीर्थंकर स्तवन)

(तर्ज · घर आया मेरा परदेशी)

जिनवर ! जग उद्योत करो, भवसागर से पार करो ।।ध्रुव।।
ऋषभादिक महावीर सभी, चौवीसी विसरू न कभी ।
मम मुख गुण गण नित उचरो ।।१।। भवसागर से·
तुम हो कर्म अरि जयकर, तुम गम्भीर ज्यो सागर वर ।
मिथ्या मल मम दूर हरो ।।२।। भवसागर से
तुमने रज मल धो डाला, जरा मरण का दु ख टाला ।
मुझ पर भाव प्रसन्न धरो ।।३।। भवसागर से
तीनो लोक करे सुमिरन, स्तवन सदा और नित्य नमन ।
मुझ मे वोधि लाभ भरो ।।४।। भवसागर से
तुम चन्द्रो से भी निर्मल, तुम सूर्यो से भी उज्ज्वल ।
"पारस" सिद्धि शीघ्र वरो ।।५।। भवसागर से

लोगस्स के भावो पर ।

पाठ २०

४. अर्हन् स्तवन

(तर्ज · जन गण मधिनायक ·· ····)

हे अर्हन् ! भगवन् जय हे ! शासन आदि विधाता ।।ध्रुव।।
धार्मिक तीरथ चार बताये, बोध स्वय ही पाये ।
सब पुरुषों मे उत्तम सिंह वर पुण्डरीक पद पाये ।
गधहस्ति मदवारे, लोकोत्तम रखवारे, हित प्रदीप प्रद्योता ।
हे अभयद ! हे नयनद ! जय हे ! शासन आदि विधाता ।
जय हे,जय हे,जय हे,जय जय जय जय हे,शासन आदि विधाता
मार्ग दिखाया, मोक्ष बताया, सयम विधि सिखलाई ।
धर्म बताया, अर्थ सुनाया, आगे कूच कराई ।
धर्म सारथी भारी, धर्मचक्र करधारी, ज्ञान न कही रुक पाता ।
हे अछद्म ! हे जिनवर ! जय हे ! शासन आदि विधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे शासन आदि विधाता
जयी बनाये, समुद तिराये, बोध दे मुक्त बनाये ।
तीर्ण स्वय भी, बुद्ध स्वय भी, मुक्ति स्वय भी पाये ।
तुज सब जाननहारे,तुम सब देखनहारे,शिव थिर अरुज अनता ।
हे अक्षय ! हे सुखमय ! जय हे ! शासन आदि विधाता ।
जय हे, जय हे, जय हे,जय जय जय जय हे, शासन आदि विधाता
जन्म नही अवतार नही, अपुनरावृत्ति पाई ।
सिद्धि नाम है प्रकट विश्व मे वह पचम गति पाई ।
बोधि बीज दाता रे द्वीप बचावनहारे 'पारस' शरण प्रदाता ।
हे जित अरि ! हे जित भय ! जय! हे शासन आदि विधाता ।
जय हे,जय हे,जय हे जय जय जय जय हे शासन आदि विधाता।।

—'नमोत्थुरण' के भावो पर ।

पाठ २१

५. गुरु वन्दनादि

(तर्ज—घर आया मेरा परदेशी)

गुरुवर ! वन्दन अनुमति दो, चरण कमल मे आश्रय दो ।।ध्रुव।।

पाप क्रियाए तज आये सचित द्रव्य भी तज आये ।
यथाशक्ति विधि वन्दन लो ।।चरण कमल मे··· ···।। १ ।।

मस्तक चरणो मे धरते दोनो हाथो से छूते ।
कष्ट हुआ हो क्षमा करो ।।चरण कमल मे ··।। २ ।।

अहो रात्र क्या शुभ वीता ? सयम मे न रही बाधा ।
सुख शाता का उत्तर दो ।। चरण कमल मे·····।। ३ ।।

जो अपराध हुए हमसे, दूर हरें मन वच तन से ।
निष्फल आशातना करो ।। चरण कमल मे····· ·।। ४ ।।

मन वच तन के योग बुरे, हम कषाय से घिरे हुए ।
झूठ दिखावा मिथ्या हो ।। चरण कमल मे·······।। ५ ।।

हम है भूलो के सागर, पर है आप क्षमासागर ।
"पारस" का उद्धार करो ।। चरण कमल मे ···।। ६ ।।

—'इच्छामि खमासमणो' के भावों पर



पाठ २२

काव्य विभाग

१. श्री पंचपरमेष्ठि स्तवन

(तर्ज - काहे मचावे, शोर, पपीहा !)

एक सौ आठ, परमेष्ठि ! करते है नमस्कार ।। टेर ।।
अरिहन्त कर्म–शत्रु विजेता, त्रिजग–पूजित तीर्थ–प्रणेता,
न राग–द्वेष विकार ।। परमेष्ठि । १ । करते हैं

सिद्धो के सब कर्म खपे है, सारे कारज सिद्ध हुए है ।
ज्योति मे ज्योति अपार ।। परमेष्ठि । २ । करते हैं

आचार्य आचार पालते सघ शिरोमणि सघ दिपाते ।
सकल सघ रखवार ।। परमेष्ठि । ३ । करते है

उपाध्याय अध्ययन कराते, भ्राति मिटाते ज्ञान बढाते ।
द्वादशाग आधार ।। परमेष्ठि । ४ । करते हैं....

साधु आत्मा अपनी साधे, महाव्रत समिति गुप्ति आराधे ।
त्याग दिया ससार ।। परमेष्ठि । ५ । करते है....

पाच नमन सब पाप प्रणाशक, उत्तम मगल विघ्न-विनाशक ।
भव-भव शाति अपार ।। परमेष्ठि । ६ । करते हैं

हम मे भी तुमसे गुण जागे, हम भी परमेष्ठि पद पावे ।
"पारस" हो भव पार ।। परमेष्ठि । ७ । करते है

—नमस्कार महामन्त्र के भावो पर ।

पाठ २३

जिनवाणी

वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के श्रुत कुंड धरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता सब दूर करी है ।।
ज्ञान-पयोदधि मांहि रली, बहुभग तरंगन ते उछरी है ।
ता शुचि शारद गग नदी, प्रति मे अजलि निज शीश धरी है ।।

ज्ञान-सुनीर भरी सलिला, सुर धनु प्रमोद ज्यो खीर निधानी ।
कर्म जो व्याधि हरंत-सुधा, अघ मैल हरत शिवा करमानी ।।
जैन-सिद्धात की ज्योति जगी, सुर-वृक्ष समान महा सुख दानी ।
लोक-अलोक प्रकाश भयो, मुनिराज बखानत है जिन वाणी ।।

अन्य वाणी से श्रेष्ठ जिनवाणी

कैसे करी कैतकी, कणेर एक कह्यो जाय ।
आक-दूध गाय-दूध, अन्तर घणेरो है ।।

रीरी होत पीरी पण, होश करे कचन की ।
कहा काग वाणी कहा, कोयल की टेर है ।।

कहा भानु-तेज भयो, आगियो विचारो कहां ।
पूनम को उजियालो कहा, अमावस-अधेर है ।।

पक्ष छोड पारखी, निहारो नेक निश्चय करी ।
जैन-वैन और बैन, अन्तर घणेर है ।।

वीतराग-वाणी साची, मोक्ष की निशानी महा ।
सुकृत की खान ज्ञानी, आप मुख बखानी है ।।

इनको आराध के तिरे है अनन्त जीव ।
सो ही जहाज जाण, श्रद्धा मन आणी है ।

श्रद्धा है सार धार, श्रद्धा ही से खेवो पार ।
श्रद्धा-बिन जीव ख्वार, निश्चय कर मानी है ।।

वाणी तो घणेरी पण, वीतराग-तुल्य नही ।
इनके सिवाय और, छौरासी कहानी है ।

पाठ २४

धर्म शिक्षावली

णमोकार मन्त्र



णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,

णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं,

णमो लोए सव्वसाहूणं ।

अर्थ—अरिहन्तो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो । उपाध्यायो को नमस्कार हो, इस लोक के सब साधुओ को नमस्कार हो ।

णमोकार मन्त्र का माहात्म्य

एसो पच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाण च सव्वेसि, पढमं हवइ मंगलं ।

अर्थ—यह पच णमोकार मन्त्र सब पापो का नाश करने वाला है और सव मगलो मे पहला मंगल है ।

णमोकार मन्त्र मे पाच पद हैं और कुल ३५ अक्षर हैं । पहले पद मे ७ अक्षर, दूसरे मे ५, तीसरे मे ७, चौथे मे ७ और पाचवे मे ६ अक्षर हैं ।

नमस्कार—माहात्म्य

एक्को वि णमुक्कारो, जिणवरवसहस्सवद्धमाणस्स ।

ससारसायराओ, तारइ नरं वा नारिं वा ।।

जिनेश्वर ऋषभदेव से महावीर स्वामी पर्यंत चौबीस ही जिनेश्वरो को भावपूर्वक किया जाने वाला एक भी नमस्कार, ससार समुद्र मे डूबते हुए मनुष्य या स्त्री सभी प्राणियो को तिरा देता है ।

पाठ २६

दिन-चर्या

सुरेश—(रमेश के घर पहुंचकर) अरे रमेश । यह क्या ? नौ बज रहे हैं और तुम अभी तक सोये हुए हो ?

रमेश—(आवाज सुनकर अगडाई लेते हुए उठकर) हां भाई, आज रविवार है, छुट्टी का दिन ! और काम ही क्या है ? जल्दी उठकर करूंगा भी क्या ? आज आपने सवेरे-सवेरे कैसे कष्ट किया ?

सुरेश—मैं तो हमेशा अपने समय पर उठ जाता हूं, चाहे रविवार हो या सोमवार। मेरा अपना टाइम टेवल (समय-चक्र) बना हुआ है, उसी के अनुसार अपना कार्यक्रम करता हू, आज रविवार का दिन है, यह समय मेरे अपने मित्रो मे मिलने का निर्धारित है। मैंने सोचा, चलो आज रमेश से ही कुछ चर्चा करेंगे । तुम्हे भी अपने प्रतिदिन की दिनचर्या बना लेनी चाहिये, जिससे समय का सही उपयोग हो सके । और रविवार के अवकाश का सदुपयोग किया जा सके ।

रमेश—यह तो आपने अच्छा सुझाव दिया । पर मैं तो समझता नही, आप ही मेरा टाइम टेवल बना दीजिये । मुझे किस समय क्या करना चाहिये । हम उसके अनुसार ही कार्य करेंगे ।

सुरेश—यह तो सामान्य नियम है कि—"प्रत्येक व्यक्ति को जितना काम उतना आराम भी करना चाहिये। बीस वर्ष की उम्र के बाद ४० वर्ष की उम्र तक आराम में एक घटे की कमी एवं बाद मे प्रत्येक १० वर्ष में एक घंटे की कमी हो ही जाती है। अभी आप बालक हो, अत. आठ घटे काम और आठ घटे आराम शेष आठ मे से ४ घटे नहाने-धोने-खाने-पीने के लिये, २ घटे मेहमानो का स्वागत–सत्कार एवं माता-पितादि गुरुजन की सेवा–सहायता मे लगाकर शेष दो घंटे आत्म–चिंतन रूप धर्म-आराधना के लिए नियत करने चाहिये।

प्रतिदिन प्रात ५ बजे उठकर पर्यंकासन से बैठकर दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थिर कर ग्यारह वार नमस्कार महामत्र का ध्यान करना चाहिये। फिर विस्तर से नीचे उतर कर पूर्व या उत्तर-दिशा की ओर मुंह कर पंचपरमेष्ठी को पूर्व मे वतलाई विधिपूर्वक वदन करना चाहिये फिर घर मे रहे हुए ज्येष्ठ सदस्यो का चरण छू कर आशीर्वाद लेना चाहिए–उसके बाद पूर्व मे वतलाई हुई विधि से धर्मस्थान मे जाकर 'गुरु-दर्शन" एव शास्त्र वाचनादि करना चाहिये।

प्रातः ६ से ७ वजे तक खुली हवा मे घूमना—
शौचादि से निवृत्त होना चाहिये।
" ७ से ८ बजे तक स्नान-मंजनादि से निवृत्ति

जबू द्वीप के भारत क्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में भिन्न-भिन्न समयो मे हुए एक से लेकर चौबीस ही तीर्थंकरो ने इस समस्कार मत्र का वोध दिया है। उन्होने फरमाया कि—"जो भव्य जीव इस नमस्कार मन्त्र के पाचो पद के योग्य गुणो वाले पचपरमेष्ठी को पहचान कर उनके बताये हुए मार्ग पर चलता है, उसे सच्चा सुख प्राप्त होता है।

अत. नमस्कार मत्र मोह-राग द्वेष को हटाने वाला और मिथ्याज्ञान दूर कर सम्यग्ज्ञान प्राप्त कराने वाला महामंत्र है।

प्रश्नावली

१ णमोकार मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करो।
२ णमोकार मन्त्र मे किन-किन को नमस्कार किया गया है।
३. णमोकार मन्त्र का माहात्म्य सुनाओ और उसका अर्थ अपने शब्दो मे बताओ।
४. इस मन्त्र मे कुल कितने अक्षर है ?
५ अलग-अलग पदो मे कितने अक्षर हैं ?

पाठ २५

णमोकार मन्त्र का फल

एक सेठ जी कही जा रहे थे। राह मे एक जख्मी बैल सिसक रहा था। उसे देखकर सेठ जी को दया आई।

उन्होंने बैल के पास बैठकर धीरे-धीरे णमोकार मन्त्र सुनाना शुरु कर दिया। नौ बार सुनाने से उस बैल का ध्यान मन्त्र मे लग गया। उसका मन शान्त हो गया। वह शुभ भावो से भरा और मर कर एक नारी के गर्भ मे आकर पुत्र रूप मे पैदा हो गया। जवान होने पर राज्य का सुख भोगने लगा।

णमोकार मन्त्र से पाप नाश होते हैं और पुण्य का वन्ध होता है, इसलिए णमोकार मन्त्र को नित्य प्रति जपना चाहिये।

प्रश्नावली

१. णमोकार मन्त्र के पढने से क्या फल होता है ?

२. णमोकार मन्त्र को कब जपना चाहिए ?

३ णमोकार मन्त्र के फल की कोई कहानी याद हो तो सुनाओ।

४. क्या तुम भी कभी णमोकार मन्त्र को जपा करते हो ?



पाठ २६

दिन-चर्या

सुरेश—(रमेश के घर पहुंचकर) अरे रमेश ! यह क्या ? नौ बज रहे हैं और तुम अभी तक सोये हुए हो ?

रमेश—(आवाज सुनकर अगड़ाई लेते हुए उठकर) हां भाई, आज रविवार है, छुट्टी का दिन ! और काम ही क्या है ? जल्दी उठकर करूंगा भी क्या ? आज आपने सवेरे-सबेरे कैसे कष्ट किया ?

सुरेश—मैं तो हमेशा अपने समय पर उठ जाता हूं, चाहे रविवार हो या सोमवार। मेरा अपना टाइम टेबल (समय-चक्र) बना हुआ है, उसी के अनुसार अपना कार्यक्रम करता हूं, आज रविवार का दिन है, यह समय मेरे अपने मित्रो मे मिलने का निर्धारित है। मैंने सोचा, चलो आज रमेश से ही कुछ चर्चा करेंगे। तुम्हे भी अपने प्रतिदिन की दिनचर्या बना लेनी चाहिये, जिससे समय का सही उपयोग हो सके। और रविवार के अवकाश का सदुपयोग किया जा सके।

रमेश—यह तो आपने अच्छा सुझाव दिया। पर मैं तो समझता नही, आप ही मेरा टाइम टेबल बना दीजिये। मुझे किस समय क्या करना चाहिये। हम उसके अनुसार ही कार्य करेंगे।

सुरेश—यह तो सामान्य नियम है कि—"प्रत्येक व्यक्ति को जितना काम उतना आराम भी करना चाहिये। बीस वर्ष की उम्र के बाद ४० वर्ष की उम्र तक आराम मे एक घंटे की कमी एवं बाद मे प्रत्येक १० वर्ष में एक घंटे की कमी हो ही जाती है। अभी आप बालक हो, अत. आठ घंटे काम और आठ घंटे आराम शेष आठ मे से ४ घंटे नहाने-धोने-खाने-पीने के लिये, २ घंटे मेहमानो का स्वागत–सत्कार एवं माता-पितादि गुरुजन की सेवा–सहायता में लगाकर शेष दो घंटे आत्म–चिंतन रूप धर्म-आराधना के लिए नियत करने चाहिये।

प्रतिदिन प्रात. ५ बजे उठकर पर्यंकासन से बैठकर दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थिर कर ग्यारह बार नमस्कार महामंत्र का ध्यान करना चाहिये। फिर बिस्तर से नीचे उतर कर पूर्व या उत्तर-दिशा की ओर मुंह कर पंचपरमेष्ठी को पूर्व मे बतलाई विधिपूर्वक वंदन करना चाहिये फिर घर मे रहे हुए ज्येष्ठ सदस्यो का चरण छू कर आशीर्वाद लेना चाहिए–उसके बाद पूर्व मे बतलाई हुई विधि से धर्मस्थान मे जाकर 'गुरु-दर्शन" एवं शास्त्र वाचनादि करना चाहिये।

प्रातः ६ से ७ बजे तक खुली हवा मे घूमना—
शौचादि से निवृत्त होना चाहिये।
" ७ से ८ बजे तक स्नान-मंजनादि से निवृत्ति

प्रात ८ से ९ वजे तक घर पर अध्ययन आदि करना
" ९ से १० " " माता-पितादि को कार्य में-
सहयोग,
" १० वजे भोजनादि से निपटकर शाला जाना
" ११ वजे से ५ वजे तक शाला मे पढना एवं
मित्रो के साथ खेलकूद
साय ५ से ६ वजे तक हाथ मुंह धोकर भोजनादि
करना ।
" ६ से ७ वजे तक माता-पितादि को सहयोग
एवं मेहमानो का स्वागत,
" ७ से ८ वजे तक घर मे अध्ययनादि करना ।
रात्रि ८ से ९ वजे तक धार्मिक-पठन-पाठन ।

तत्पश्चात्

हाथ मुह धोकर अपन विस्तर पर पर्यकासन से वैठकर ११ नमस्कार महामत्र का ध्यान करना चाहिये । रात्रि को भोजन कभी नही करना चाहिये । सुवह-शाम भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व ५ वार नमस्कार महामत्र का ध्यान कर स्वधर्मी-सत्कार की शुद्ध भावना पूर्वक भोजन विवेक सहित करना चाहिये । भोजन करते समय मौन रखना चाहिये । जूठा नही डालना चाहिये । अपने पहनने के कपडे और विस्तर के कपडे स्वच्छ शुद्ध और साफ धुले हुए रखना चाहिए । शरीर और कपडो की सफाई के

साथ-साथ आत्मा की पवित्रता का भी ध्यान रखना चाहिये । अवकाश के समय सत-सतियाजी-माता-पितादि गुरुजन एवं अच्छे मित्रो की सगति का कार्यक्रम बना लेना चाहिये ।

रमेश—अच्छा भैय्या ! यह आपने ठीक कार्यक्रम बता दिया । आज से हम आपकी बताई हुई दिनचर्या के अनुसार ही चलेगे और शरीरादि की सफाई के साथ ही आत्मा की पवित्रता का भी ध्यान रखेंगे । प्रत्येक रविवार या सामूहिक अवकाश के दिन कमरे का सभी सामान हटाकर सारे मकान या कमरे की धूल साफ करके, सोफा, पलग, कुर्सी आदि को धूप मे कुछ समय रखना चाहिये ।

लकडी के फर्नीचर आदि पर D. D T छिड़के ताकि उसकी गध से मच्छरादि की उत्पत्ति नही होने पावे । प्रति सप्ताह तकिये बिस्तरादि की खोले धोते रहने से खटमलो की उत्पत्ति नही होती । और इस तरह सावधानी रखने से नुक्सान की सभावना नही रहती है ।



पाठ २७

जीव और अजीव

गुरु—(एक छोटा-सा सुन्दर रबड का बना ललुआ सामने रखकर) मोहन ! बताओ, यह क्या है ?

मोहन—यह खिलौना है,बड़ा सुन्दर छोटा-सा ललुआ।

गुरु—सोहन बताओ, यह चल फिर सकता है या नही ?

सोहन—गुरुजी, अपने आप यह चल फिर नही सकता यदि हम इसे हिलाये तो हिलडुल सकता है।

गुरु—राधा, तुम बताओ, क्या यह देख सकता है ?

राधा—गुरु जी, इसके आख का निशान तो बना है, परन्तु देख नही सकता।

गुरु—श्याम, तुम बताओ यह कुछ खा-पी सकता है ?

श्याम—गुरु जी, नही।

गुरु—राम, लो यह गुलाब का फूल, जरा इस ललुवे को सुघा करके तो देखो।

राम—गुरु जी, मैंने तो बहुत उलट-पुलट कर यह फूल इसे सुंघाना चाहा परन्तु यह तो सुंघता ही नही।

गुरु—इसको कोई गाना तो सुनाओ।

किशोर—गुरु जी, यह गाना नही सुन सकता। यह तो इस तरह खडा है, जैसे कोई दीवार हो।

गुरु—इसे जरा धूप मे रख कर देखो, इसे पसीना आता हैं या नही ?

छात्र—गुरु जी, न पसीना आता है और न यह कुछ कहता है। यह तो ऐसा ही पडा है।

गुरु—अच्छा, जरा एक थप्पड़ तो लगाओ, देखे यह क्या करता है ?

छात्र—(थप्पड़ लगाकर) गुरु जी, यह न तो रोता है, न कुछ कहता है। यह ज्यो का त्यो पड़ा हुआ है।

गुरु—देखो, इसके आंख, नाक, कान, मुंह आदि के सब निशान बने हैं। इसके हाथ-पांव भी हैं, फिर भी यह तुम्हारी तरह से चल फिर नही सकता। न खाता है, न पीता है, न सूघता है, न सुनता है, न रोता है, न हसता है। न इसे गर्मी का ज्ञान है, न इसे सुख-दुःख जान पडता है और न यह घटता-बढता है। इसमे और तुममे यह भेद क्यो ?

मोहन—गुरु जी, मैं बतलाऊं ? इसमे 'जीव' नही है, यह वेजान है। हम मे जीव है और हम जानदार है।

गुरु—शाबास मोहन !

गुरु—अब तुम यह बताओ कि मेज, कुर्सी, कलम, दवात, कागज, किताब ये चीजे जो तुम्हारे सामने रखी हैं जानदार जीव हैं या वेजान 'अजीव' हैं।

मोहन—गुरु जी, ये सब वेजान 'अजीव' है।

गुरु—राधा, क्या तुम किसी और वेजान 'अजीव' चीज का नाम बता सकती हो ?

राधा—जी हां, चारपाई, कोट, टोपी, रुपया, पैसा, कपडा, ईट, पत्थर, दीवार ये सब चीजें वेजान 'अजीव' ही हैं।

गुरु—श्याम, तुम कुछ जानदार चीजो के नाम तो बताओ।

श्याम—आदमी, औरत, लड़का, लड़की।

गुरु—राम, क्या तुम और कुछ जानदार चीजो के नाम बता सकते हो ?

राम—जी हा ! हाथी, बैल, घोडा, ऊंट, कीड़ी, मकोडा, चिडिया, तोता, मक्खी, मछली आदि ये सब जानदार हैं क्योकि ये अपनी इच्छा से चलते-फिरते, दौडते और उठते-बठते नजर आते हैं। ये खाते हैं, पीते हैं। दौडते है, सूघते है और बढते हैं।

गुरु—शाबाश राम ! देखो बेटा, वृक्ष मे भी जान है। वे भी मरते हैं, खाते है, बढते हैं और उनको दुःख-सुख जान पडता है।

छात्र—गुरु जी, यह तो नई बात है। पहले हम यह नही जानते थे।

गुरु—अब तुम याद रखना—

१ जिनमे जान हो और जानने की ताकत हो, उन्हें जीव कहते हैं। जैसे—आदमी, घोड़ा, गाय, कबूतर आदि।

२ जिनमे जान नही और जानने की ताकत नही, वे अजीव या बेजान हैं। जैसे—किताब, मेज, कुर्सी आदि।

प्रश्नावली

१. जीव किसे कहते हैं? जीव की मोटी पहचान क्या है?

२. अजीव किसे कहते हैं ?

३ नीचे लिखे शब्दो मे से जीव-अजीव को अलग-अलग बताओ.—

घोडा, वाईसिकिल, रेल, इजन, गाय, भैस, कबूतर, कुर्सी, दीवार, हिडोला, सिनेमा की तस्वीरे, वृक्ष, जल, टोपी, पैसा, रुपया, हलवाई, जहाज, कीडा, मकोडा, मछली, किताब, दवात, कमल, मोटर ।

४. इसके जानने से क्या लाभ हैं ।



पाठ २८

गतियां

छात्र—जयजिनेन्द्र गुरुजी ! आपने कहा था कि—"पाप करने वाला मरकर दुर्गति मे जाता है । तो ये गतिया कितनी है और कौन-२ से जीव किस गति मे जाते हैं ?

गुरुजी—जयजिनेन्द्र ! वहुत अच्छा है, तुमको तो अव इन वातो मे आनन्द आने लगा है । आना चाहिये । हां, तो सुनो ! संसारी जीव मरकर जहा जाते है, उस अवस्था को गति कहते हैं । वे चार हैं नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव ।

छात्र—इनमे सुगति कौनसी और दुगति कौनसी है ।

गुरुजी—नरक और तिर्यंच ये दुर्गति हैं और मनुष्य तथा देव सुगति हैं ।

छात्र—मनुष्य तो हम तुम भी हैं न ?

गुरुजी—हम मनुष्य गति मे है, अतः मनुष्य कहलाते है । जब कोई जीव कही से मरकर मनुप्य गति मे जन्म लेता है, तो उसे मनुष्य कहते है ।

छात्र—अच्छा तो, हम मनुष्य गति के जीव है । हाथी, घोड़ा, कबूतर, कीडी आदि किस गति के जीव कहलाते हैं ?

गुरुजो—ये तियंच गति के जीव है । पृथ्वी, पानी; अग्नि, हवा, वनस्पति, कीड़े, मकोड़े और पशुपक्षी जो हम देखते हैं, वे सब तिर्यंच गति के जीव हैं । इन जीवो को तिर्यंच कहते हैं ।

छात्र—दिखाई देने वाले सभी जीव मनुष्य और तिर्यंच हैं तो नारकी और देव कौन हैं ?

गुरुजी—जिन जीवो के जैसे—भाव होते हैं, वैसा ही फल उनको मिलता है, दीर्घ अवधि वाले पाप का फल दीर्घकाल तक भोगने का स्थान नर्क गति है और पुण्य का फल भोगने का स्थान देव गति है । नरक में जन्म लेने वाले जीवो को नारकी और देवगति मे जन्म लेने वाले जीवों को देव कहते हैं । नरकगति मे जीवो को भयकर भूख-प्यास-सर्दी-गर्मी सहनी पड़ती है । वे आपस मे लडते हैं । देवगति मे जीवों

को सभी प्रकार का सुख मिलता है । पर वह स्थाई नही होता ।

छात्र—कौन-२ से कार्यो से जीव इन गतियो मे जाता है ?

सुरेश—१ महाआरम्भी, महापरिग्रही, मद्य मांस का सेवन और पंचेन्द्रिय का वध करने वाला नरकगति मे जाता है।

२ छल-कपट करने वाला, झूठ बोलने वाला और खोटा तोल नाप करने वाला जीव तिर्यंच बनता है।

३ अल्प आरम्भी, अल्प परिग्रही, सरल और नम्र व्यक्ति मनुष्य गति मे जाता है ।

४ सराग-संयमी और श्रावक तथा अज्ञान तपस्वी, अकाम निर्जरा करने वाला जीव देवगति मे जन्म लेता है ।

छात्र—इनमे अच्छी गति कौनसी है ?

गुरुजी—ये चारो गति अच्छी नही है । और संसार में वास्तविक सुख नही है । अच्छी गति तो मोक्ष (कर्मो से मुक्त होता) है । उसे सिद्ध गति कहते हैं । राग-द्वेष से रहित भाव ही वीतराग भाव है अत. वह मोक्ष का कारण है ।

छात्र—इन सबके जानने से क्या फायदा है ?

गुरुजी—जब यह ज्ञान हो जायगा कि—"चारो गतियो में दु.ख ही है, वास्तविक (सही) सुख नही है । और उससे छूटने का उपाय वीतराग भाव ही है, तो

हमारा कर्त्तव्य वीतराग भाव प्राप्त करना होगा। उसके लिये ज्ञान-स्वभावी आत्मा का आश्रय लेना चाहिये।



पाठ २६

भगवान् महावीर

गुणवत—पिताजी ! आप क्या कह रहे है ?

जिनदास—बेटा ! 'पुच्छिसुण' का पाठ कर रहा हू।

गुणवंत—यह 'पुच्छिसुण' क्या है ?

जिनदास—'पुच्छिसुण' श्री वीर प्रभु की स्तुति है।

गुणवत—वीर प्रभु कौन थे ? हजारो-लाखो लोग जिनकी स्तुति एव भक्ति करते है ?

जिनदास—वे अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके अनेक नाम हैं। महावीर वर्द्धमान, सन्मति आदि। वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे, वे परम सुखी भी थे, क्योकि उनके राग-द्वेष नष्ट हो चुके थे।

गुणवत—क्या वे जन्म से ही सर्वज्ञ-वीतरागी थे ?

जिनदास—नही, उन्होने वीतरागता एवं सर्वज्ञता सम्यक् पुरुपार्थ से प्राप्त की थी।

गुणवत—उनके विषय मे विस्तार से बतलाइये ?

जिनदास—सुनो ! जिस क्षेत्र मे हम रहते हैं-यह जंबू द्वीप का भारतक्षेत्र कहलाता है । उसमे मगधदेश है-उस मगधदेश मे क्षत्रियकुड नामक बहुत ही सुन्दर नगर था । बालक वर्द्धमान का जन्म ईश्वी सन् ५९९ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (तेरस) के दिन इसी नगर के महाराजा सिद्धार्थ की धर्मपरायण पत्नी त्रिशला महारानी की कोख से हुआ था, राजा-रानी और नगर की सारी जनता के साथ स्वर्ग के देव तथा इन्द्रो ने भी उनका जन्म उत्सव मनाया था । इसके बाद तो उन्होने जन्म-मरण का नाश ही कर दिया था । वे प्रतिभाशाली, विचारक, विवेकी और आत्म-ज्ञानी थे । जब के माता के गर्भ मे थे तब राजा सिद्धार्थ के राज्य मे सभी वस्तुओ की वृद्धि हुई, इसलिए उनका नाम वर्धमान रखा गया ।

उन्होने कभी किसी से डरना सीखा ही नहीं था इसलिये वे वचन से ही वीर, अतिवीर कहलाए । वे काश्यप-गोत्रीय राजकुमार थे । यौवन अवस्था प्राप्त होने पर उनके माता-पिता और बडे भाई नन्दीवर्धन यशोदा-नामक सर्व-गुण-सम्पन्न सर्वांग सुन्दरी राजकुमारी से उनका विवाह भी किया था । जिससे उनको 'प्रियदर्शना' नामक कन्या हुई । कन्या के बडी होने पर उसका विवाह राजगृह नगर के रामकुमार 'जमाली' के

साथ हुआ । वे तीस वर्ष की उम्र में गृहस्थाश्रम का त्याग कर साधु बने और लगातार १२ वर्ष साढे छह माह तक घोर तपश्चरण कर उन्होंने आत्म-साधना की और केवलज्ञानी बने । उस समय उनकी उम्र ४२ वर्ष की थी ।

हम लोग वैशाख सुदी दशमी को उनका केवलज्ञान महोत्वसव मनाते हैं । उस दिन देवताओ ने भी 'केवलज्ञान-महोत्सव' मनाया था । समवशरण की रचना की थी । 'केवलज्ञान' उत्पन्न होने के एक दिन पश्चात् श्री इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणो ने अपने ४४०० शिष्यो के साथ इनके पास दीक्षा ली थी । इनके सघ मे चवदह हजार साधु, छत्तीस हजार साध्विया, एक लाख ५९ हजार श्रावक और तीन लाख १८ हजार श्राविकाए थी । लगातार तीस वर्ष तक विभिन्न देशो-नगरो मे विहार कर तत्त्व का उपदेश दिया । अन्त मे पावापुर मे ७२ वर्ष की आयु मे दीपावली के दिन मोक्ष मे पधारे । इसलिए दीपावली का उत्सव प्रभु महावीर के निर्वाण - उत्सव के रूप मे प्रति वर्ष मनाया जाता है ।

उनके प्रधान शिष्य इन्द्रभूति को उसी दिन 'केवलज्ञान' प्राप्त हुआ था । इन्द्रभूति का गौतम गोत्र था और ग्यारह गणधरोंमे वे प्रथम गणधर थे । उन्हे, गौतम गणधर भी कहते है । प्रभु की प्रधान शिष्या 'चन्दनबाला' थी ।

भगवान् महावीर के उपदेशो का इतना प्रभाव पड़ा कि कई राजा-महाराजा और महा-रानियो ने भी उनके सघ मे दीक्षा ग्रहण की। मगधदेश का राजा बिंबसार—(श्रेणिक) भी उनका अनुयायी बना।

गुणवंत—तीस वर्ष तक वे क्या उपदेश देते रहे ?

जिनदास—उनके उपदेश का कुछ अश इस प्रकार है—

१ सभी आत्माए मौलिक स्वरूप की दृष्टि से समान है कोई छोटा (नीच) वडा (ऊच) नही है। किसी प्राणी की हिंसा मत करो। यथाशक्य रक्षा करो। किसी का दिल मत दुखाओ।

२ सदा सत्य बोलो-झूठ बोलना पाप है।

३ चोरी मत करो, कोई वस्तु चाहिये तो पूछकर लो।

४ सदाचार का पालन करो, सयम से रहो।

५ सम्पत्ति का सग्रह नही, सदुपयोग करो। लोभी व्यक्ति सदा दु खी रहता है।

६ छलकपट मत करो। किसी को ठगो मत।

७ अभिमान मत करो। नम्र वनो।

८ क्रोध मत करो, अपराधी को क्षमा कर दो। "क्षमा वीरस्य भूषण"

९ मन पर नियत्रण रखो । राग-द्वेप मत करो।

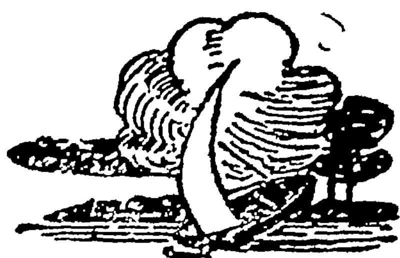
१० जो जीव सम्यक् पुरुषार्थ करता है, वह भगवान् वनता है ।

११ हम अपनी ही गलती से दुखी है, गलती सुधार कर सुखी वन सकते है ।

१२ सदा समभाव रखो, वषमता से क्लेश होता है।

१३ वीतरागी वनो, स्वरूप रमण करे

१४ ज्ञाता-द्रष्टा-वनो हमारा स्वभाव जानना देखना है आदि-आदि ।



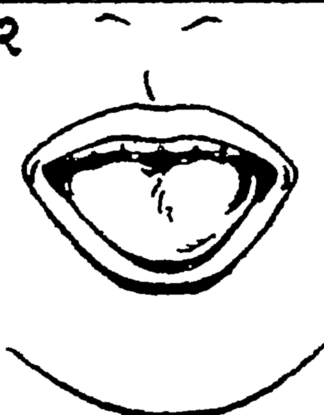
पाठ ३०

पांच इन्द्रियां

१



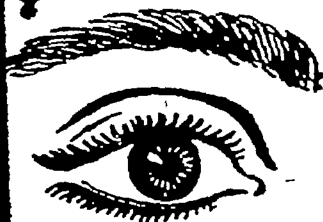
२



३



४



५



[१—स्पर्शन—इन्द्रिय]

गुरु—सोहन ! बर्फ कैसी होती है ?

सोहन—बर्फ ठडी होती है ।

गुरु—बेटा ! आग कैसी होती है ?

सोहन—आग बडी गर्म होती है ।

गुरु—बेटा, बताओ लोहा और रुई कैसे होते हैं ?

सोहन—लोहा भारी, रुई हल्की होती है ।

गुरु—सोहन, जरा ईंट और शीशे पर हाथ फेरकर बताओ कि यह कैसे हैं ?

सोहन—शीशा चिकना और ईंट खुरदरी होती है ।

गुरु—सोहन, क्या तुम कभी गदेले पर सोये हो ?

सोहन—जी हा, हर रोज सोता हूं । वह बडा नरम होता है ।

गुरु—जरा इस मेज और पत्थर के फर्श पर लेटकर देखो ।

सोहन—ये तो बड़े कड़े है ।

गुरु—बेटा, यह बताओ फर्श को ठण्डा, आग को गर्म, लोहे को भारी, रुई को हल्का, ईंट को खुरदरा, शीशे को चिकना, गदेले को नरम, मेज और फर्श को कडा तुमने कैसे जाना ?

सोहन—हाथ, पाव या शरीर से छूकर ।

गुरु—बेटा याद रखो, जिससे किसी चीज को छूकर जाना जाता है, उसे 'स्पर्शन—इन्द्रिय कहते हैं ।

[२–रसना इन्द्रिय]

गुरु–मोहन ! क्या तुमने कभी पेड़ा खाया है ?

मोहन—जी हा, कई बार ।

गुरु—उसका स्वाद कैसा होता है ?

मोहन—बडा मीठा ।

गुरु—क्या तुम नीबू का स्वाद बता सकते हो ?

मोहन—जी हा, नीबू खट्टा होता है ।

गुरु—शाबाश मोहन ! नीम के पत्ते, मिर्च और आवले का स्वाद बता सकते हो ?

मोहन—नीम के पत्ते कडवे और मिर्च चरपरी होती है, परन्तु मैंने अब तक आवला तो चखा नही ।

गुरु—लो बेटा–यह आवला लो । इसे चखकर देखो ।

मोहन—(आवला चखकर) इसका स्वाद न खट्टा, न मीठा है, कुछ और ही तरह का हैं ।

गुरु—बेटा, इस स्वाद को कषायला कहते हैं ।

गुरु—मोहन, जरा यह तो बताओ कि तुमने पेड़ा, नीम के पत्ते, मिर्च और आवले का स्वाद किस प्रकार जाना ?

मोहन—जीभ से चख कर ।

गुरु—वेटा, बस याद रखो कि जिसके द्वारा किसी चीज को चखकर उसका स्वाद जाना जाय, उसे जीभ या 'रसना–इन्द्रिय' कहते हैं ।

[३–घ्राण इन्द्रिय]

गुरु—गोविन्द, कहा से आ रहे हो ?

गोविन्द—मैं सीधा बाग से आ रहा हू ।

गुरु—हाथ मे क्या है ?

गोविन्द—गुलाब के फूल है, इनसे बड़ी खुशबू आती है ।

गुरु—गोविन्द, क्या तुमने कभी मिट्टी के तेल के पास खडे होकर देखा है ?

गोविन्द—जी हा ! मिट्टी के तेल में बड़ी बदबू आती है ।

गुरु—गोविन्द, तुमने गुलाब की खुशबू और तेल की बदबू को कैसे जाना ?

गोविन्द—नाक से सूंघ कर ।

गुरु—बस बेटा, याद रखो, जिसके द्वारा किसी चीज को सूंघ कर जाना जाय कि उसमे खुशबू है या बदबू, उसे 'घ्राणेइन्द्रिय' (नाक) कहते है ।

[४–चक्षु–इन्द्रिय]

गुरु—सुन्दर, कोयले का रंग कैसा होता है ?

सुन्दर—कोयला काला होता है ।

गुरु—सोने-चांदी का रग कैसा होता है ?

सुन्दर—सोना पीला और चांदी सफेद होती है ।

गुरु—सुन्दर, क्या तुमने कभी मोर का पंख देखा है उसका रंग कैसा होता है ?

सुन्दर—मोर का पंख नीला होता है।

गुरु—सुन्दर, लाल रंग भी जानते हो ?

सुन्दर—जी हा, खून लाल रग का होता है।

गुरु—कच्चे आम का रग कैसा होता है ?

सुन्दर—कच्चे आम का रग हरा होता है।

गुरु—वेटा, तूने यह कैसे जाना कि कोयला काला, सोना पीला, चादी सफेद, मोर का पंख नीला, खून लाल और आम हरा होता है ?

सुन्दर आख से देखकर।

गुरु—वेटा, याद रखो, जिसके द्वारा किसी चीज को देखकर रग को जाना जाय, उसे 'चक्षु–इन्द्रिय, (आख) कहते है।

[५–कर्ण–इन्द्रिय]

गुरु—[बाजा बजाकर] जयचन्द, यह क्या आवाज आ रही है ?

जयचन्द—यह बाजा बज रहा है।

गुरु—जयचन्द, जरा देखना, बाहर कैसा शोर हो रहा है ?

जयचन्द—यह तो कुत्तो के भौंकने की आवाज है। कुछ आदमी भी गा रहे हैं।

गुरु—जयचन्द, यह तो बताओ तुमने वाजे की, कुत्ते की और आदमी की आवाज को कैसे जाना ?

जयचन्द—कान से सुनकर।

गुरु—वस वेटा, याद रखो, जिसके द्वारा आवाज सुनाई दे, उसे 'कर्ण-इन्द्रिय' (कान) कहते है ।

प्रश्नावली

१. इन्द्रिया कितनी होती है ? उनके नाम बताओ ?
२. स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते है ? इससे क्या जाना जाता है?
३. रसना इन्द्रिय किसे कहते है ? इससे क्या जाना जाता है?
४. घ्राण-इन्द्रिय किसे कहते हैं ? इससे क्या जाना जाता है?
५. चक्षु-इन्द्रिय किसे कहते हैं ? इससे क्या जाना जाता है?
६. कर्ण-इन्द्रिय किसे कहते है ? इससे क्या जाना जाता है?



पाठ ३१

जीव जाति

प्यारे बालको । इन्द्रियो का पाठ तुम पहले पढ चुके हो । इन्द्रियो के भेद से संसारी जीव पांच प्रकार के होते हैं । एकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव और पाच इन्द्रिय जीव । इन्हे ससारी जीव जाति भी कहते हैं ।

१ एकेन्द्रिय जीव उन्हे कहते हैं जिनके एक स्पर्शन (शरीर) इन्द्रिय ही पाई जाय, जैसे—मिट्टी, आग, हवा, फल, फूल, पेड ।

२ दो इन्द्रिय जीव उनको कहते है जिनके स्पर्शन (शरीर) और रसना (जीभ) ये इन्द्रिया पाई जाएं, जैसे—लट, शख, जोक, केंचुआ आदि ।

३ तीन इन्द्रिय जीव उनको कहते हैं जिनके स्पर्शन (शरीर), रसना (जीभ), घ्राण (नाक) ये तीनो इन्द्रिया पाई जायें, जैसे—चिउटी, मकौडा, खटमल, जूं वगैरह ।

४. चार इन्द्रिय जीव उनको कहते है, जिनके स्पर्शन (शरीर), रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आख) ये चार इन्द्रिया पाई जाये, जैसे—मक्खी, मच्छर, ततैया, भौरा वगैरह ।

५ पाच इन्द्रिय जीव उनको कहते है, जिनके स्पर्शन (शरीर), रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आख) कर्ण (कान) ये पाचो इन्द्रिया पाई जाए, जैसे—मर्द, औरत, घोडा, गाय, कबूतर, मछली, मेढक, मोर, कुत्ता, हिरन वगैरह ।

इनमे से एकेन्द्रिय जीवो को स्थावर जीव कहते है और दो इन्द्रिय से लेकर पाच इन्द्रिय तक के जीवो को त्रस कहते हैं । गीली मिट्टी, कुए का पानी, जलती आग, ठडी हवा और वृक्ष ये स्थावर जीव है ।

प्रश्नावली

१ इन्द्रियो की अपेक्षा से संसारी जीव कितने प्रकार के होते है ?

२ एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

३ दो इन्द्रिय जीव किसे कहते है ?

४ तीन इन्द्रिय जीव किसे कहते है ?

५ चार इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

६ पचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

७. नीचे लिखे शब्दों के भेद बताओ :—

मिट्टी, जल, अग्नि, वृक्ष, लट, शंख, मकौडा, चिऊटी, मक्खी, भौरा, घोड़ा, ऊट, हाथी, पुरुष, स्त्री, लड़का, मोर, चूहा, मेढक, मछली, कबूतर, चिड़िया ।

८. (अ) स्थावर जीव और (ब) त्रस जीव किसे कहते है ?

९ अधे और बहरे मनुष्य के कितनी इन्द्रिया होती हैं ?

१०. जिसके नाक होती है, उसके आख होती है या नही ? जिसके कान होते हैं, उसके आख होती या नही ?



पाठ ३२

तत्व ज्ञान

रमेश—विश्व (लोक) किसे कहते हैं ?

सुरेश—छ. द्रव्यो का समूह विश्व (लोक) कहलाता है । और विश्व को ही संसार दुनिया कहते हैं ।

रमेश—द्रव्य क्या है ?

सुरेश—गुणो के समूह को द्रव्य कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल छः द्रव्य हैं।

रमेश—सामायिक आदि करना धर्म द्रव्य होगा और हिंसा झूठ, चोरी आदि अधर्म द्रव्य ?

सुरेश—नही, धर्म अधर्म अलग द्रव्य हैं। ये तो द्रव्यो के नाम हैं। ये द्रव्य सारे लोक में दूध में घी की तरह रहे हुए हैं।

रमेश—इनके बारे मे कुछ समझाइये !

सुरेश—मछली के चलने में पानी सहायक है वैसे ही जीव और पुद्गल के चलने मे धर्म द्रव्य सहायक होता है। और ठहरने मे अधर्म द्रव्य सहायक होता है, जैसे वृक्ष की छाया थके हुए पथिको को ठहरने मे सहायक होती है। ये चलाते या ठहराते नही, पर जीव और पुद्गल जब स्वयं चले या ठहरे तो वे मात्र निमित्त बनते है। जैसे जल मछली को चलाता नही, पर जब मछली चलना चाहे तो पानी निमित्त बनता है। पानी के बिना मछली चल नही सकती वैसे ही धर्म द्रव्य के बिना जीव और पुद्गल गति नही कर सकते।

रमेश—नीला-नीला दिखने वाला तो आकाश होगा ?

सुरेश—नही, आकाश तो अरूपी है। उसमे रग रूप नहीं होता जो सब द्रव्यो के रहने में निमित्त हो उसे

आकाश कहते है। लोक मे ऐसी कोई जगह नहीं जहां आकाश न हो। आकाश तो अलोक मे भी है। पर जहा छ ही द्रव्य हो उसे लोकाकाश कहते हैं। जहा द्रव्य न हो उस आकाश को स्थान को अलोकाकाश कहते है।

रमेश—काल का मतलब मृत्यु है या समय ?

सुरेश—काल का तात्पर्य यहा समय से है। यह धर्म अधर्म आकाशादि की तरह उपचार से द्रव्य है। उससे होने वाली प्रत्येक क्षण की अवस्था को समय कहते हैं। यह ससार के सभी पदार्थों के वदलने मे निमित्त मात्र होता है।

रमेश—जीव तो हमे दिखाई देते है, तब पुद्गल किसे कहते है ?

सुरेश—रूपी जीवो को छोडकर जो दिखाई देते है वे पुद्गल ही है। जिसमे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श होता है उसे पुद्गल कहते है। आखो से हम वर्ण (रंग) ही देखते हैं। पुद्गल के सिवाय शेप पाचो द्रव्यो को हम देख नही सकते क्योकि वे अरूपी हैं। उनका कोई रूप-रंग नही है, हा जिनमे ज्ञान पाया जाय उसे जीव कहते है बाकी सव अजीव द्रव्य है।

रमेश—ये द्रव्य कुल कितने हैं ?

सुरेश—धर्म-अधर्म और आकाश ये एक ही हैं पर काल द्रव्य,

जीव द्रव्य अनंत है । पुद्गल, जीवो से भी अनत गुणे है याने अनतानंत हैं ।

रमेश—इनके सिवाय दुनिया मे और क्या-क्या है ?

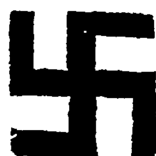
सुरेश—इनके सिवाय कोई दुनिया ही नही है । छह द्रव्यों के समूह को ही दुनिया कहते हैं । दुनिया को विश्व ससार जगत् भी कहते हैं ।

१ सशरीर जीव रूपी है, शरीर के माध्यम से उसणा अनुभव होता है ।

रमेश—लोग कहते हैं, संसार को भगवान् ने बनाया है क्या यह बात ठीक है ?

सुरेश—नही यह ठीक नही है संसार तो अनादि अनंत है । भगवान् तो दुनिया को जानने वाला सर्वशक्ति-मान् ईश्वर है । मह तीन काल और तीन लोक में समस्त पदार्थो को जानता है ।

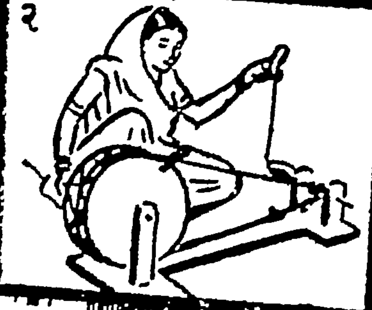
ऐसा ईश्वर ससार का कर्त्ता नही होता पर जो आठ कर्मो से युक्त जीवात्मा होता है, वे आपे-क्षिक दृष्टि से कर्त्ता होती है जो जैसे मकान हवाई जहाज आदि का निर्माण करती है ।



पाठ ३३
रेशम और खद्दर

















मोहन को कपडो का वडा शोक था। एक दिन उसने रेशमी कोट बनवाने को कहा। पिताजी ने कहा—मोहन, रेशम पहन कर क्यो पाप चढाते हो ? 'पाप' शब्द सुनकर मोहन को अचरज हुआ। उसने कहा—पिताजी पाप किस वात का ? हा, कीमत तो ज्यादा लगती है।

पिताजी ने कहा—बेटा कीमत की बात नही है तुम्हें मालूम है, यह कैसे बनता है ?

मोहन—यह तो नही मालूम। रुई की तरह रेशम भी उगता होगा और उससे कपडा बनता होगा।

पिताजी—अरे, तुझे यह भी नही मालूम। रेशम कीड़ो के मुंह की तात है। लाखो कीडो के मरने से यह पैदा होता है। इससे कितना पाप है।

मोहन—तो ऐसा कौनसा कपडा है, जिससे पाप न हो ?

पिताजी—घर के सूत का बना हुआ कपड़ा। इसमें चरवी भी नही लगती है। मिल के कपडो मे भी चरवी की कलफ लगती है। इसके लिए लाखो गाय, भैंस आदि जानवर मारे जाते है। इसलिए खादी के कपड़े काम में लाने चाहिये। खादी रुई के धागो से हाथ द्वारा वुनी जाती है। धागे चरखा कातकर हाथ से बनाते है।

मोहन—पिताजी ! आज से मैं सदा के लिए पवित्र कपडे पहना करूगा। मैंने विना जाने रेशमी कोट मगाया, क्षमा करें।

प्रश्नावली

१. तुम रेशम पसन्द करते हो या खद्दर ?

पाठ ३४

बोतल (महाविगय)

प्रसन्न—क्यो भाई ! इस बोतल मे क्या है ?

शीतल—अरे कुछ नही, व्हिस्की ही तो है।

प्रसन्न—अरे भाई ! व्हिस्की किसे कहते है ?

शीतल—अरे तुम ! नही जानते ! इसे विलायती शराब कहते है ।

प्रसन्न—तो क्या तुम शराब पीते हो ?

शीतल—हा भाई, यह तो बहुत अच्छी चीज है, बडा आनन्द आता है ।

प्रसन्न—अरे क्या अच्छी चीज ! इसे तो अनेक पदार्थों को सडा-गला कर बनाया जाता है । इसके तैयार करने में लाखों जीवों का घात होता है, तथा नशा उत्पन्न करने के कारण विवेक समाप्त होकर आदमी पागल सा हो जाता है । इसका सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । कलेजा सड जाता है । अत. इसका त्याग करना अति आवश्यक है ।

शीतल—यह तो तुमने आज नई बात बतलाई । पर मैं तो देखता हू कई जैन होटलो मे जाकर शराब-मास का सेवन करते है ।

प्रसन्न—अरे भैय्या ! शराब और मास दोनों अच्छे पदार्थ

नही है। मास की प्राप्ति तो पंचेन्द्रिय जीवो की हिसा के बिना नही होती है। और उसके बाद भी मास मे निरतर त्रस जीवो की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है। अतः मास खाने वाला असंख्य त्रस जीवो को घात करता है। आत्म-हित के इच्छुक प्राणी को मास का सेवन कदापि नही करना चाहिये। अण्डा भी त्रस जीव का शरीर होने से मास ही है। उसे भी नही खाना चाहिये।

शीतल—मैंने तो सुना था कि—"आत्म-ज्ञान के विना इन सवका त्याग कार्यकारी नही होता।" हमे तो आत्म-ज्ञान है ही नही, फिर इसका त्याग कैसे किया जाये ?

प्रसन्न—भाई, आत्मज्ञान तो सच्चा मुक्ति का मार्ग है ही। पर यह तो बताओ, क्या शरावी-कलाली को आत्म-ज्ञान हो सकता है ? अतः आत्म-ज्ञान की अभि-लाषा रखने वालो को इन सवका त्याग करना चाहिये ?

शीतल—आत्म-ज्ञान की अभिलाषा रखने वालो को शराब-मांस एव सप्त कुव्यसन का त्याग करने के बाद क्या करना चाहिये ?

प्रसन्न—उसे धर्म के अभिमुख होने के १५ कारणो को जान-कर जीवन मे अपनाना चाहिये—अर्थात् उसके अनुसार जीवन बनाना चाहिये। पन्द्रह कारण इस प्रकार है—

मेरे बीस है दुकाने, चार कारे, लोग मुझे मील-
मालिक पुकारे, आठ ठेके हैं सरकारी, सात बेटे एक
नारी ।। चार कुत्ते हैं शिकारी-एक बिल्ली है ।।बड़े।।
धनवान होके खूब इतराया, कहे मैंने दिमाग से कमाया,
उल्टी कर्मो की तस्वीर हो गए पूरे फकीर ।
कहे हाय तकदीर मेरी, ढीली है ।। बडे ।।"

इस प्रकार पुण्य-पाप के झूले मे जीव ससार में झूलता रहता है। इन दोनो तत्त्वो को कई लोग बन्धन की अपेक्षा लोहे की एव सोने की बेड़ी की सज्ञा देते हैं। यह समझाने की दृष्टि से एक देशीय रूपक है। वस्तुत- पाप तो सर्वथा हेय ही है। पर पुण्य की ज्ञेय, (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) और हेय (छोडने योग्य) तीन अवस्थाए हैं। वैसे हेय तो सभी तत्त्व हैं क्योकि ज्ञान होने पर ही ज्ञेय और उपादेय का विभाजन किया जा सकता है।

पुण्य मे ज्ञेय के साथ उपादेय एव हेय जो बताया है उसका तात्पर्य यह है कि—'साधनावस्था' का पुण्य सहयोगी होता है—क्योकि किसी भी आत्मा ने मनुष्य शरीर के बिना मोक्ष प्राप्त नही किया है। 'मनुष्य शरीर' पुण्य का फल है। उस पुण्य के फलस्वरूप शरीर मे रहती हुई आत्मा ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र की परिपूर्णता होने पर शरीर को छोड़ देती है। इसलिए पुण्य साधनावस्था में उपादेय और साधना की परिपूर्णता पर हेय माना गया है। इसको निम्न-रूपक से स्पष्ट समझा जा सकता है :—

किसी पुरुष को समुद्र के दूसरे किनारे पर भव्य भवन में जाना है—तब वह किसी जानकार व्यक्ति से रास्ता पूछता

है। तब वह जानकार पुरुष उसे बतलाता है कि—"समुद्र के इस घाट पर पत्थर की नौका भी है और लक्कड की नौका भी। पत्थर की नौका की तो जानकर उसे छोड देना। उसमे आरूढ मत होना। लक्कड़ की नौका को जानकर उसे ग्रहण करना उस पर सवार हो जाना और समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुच जाने के पश्चात् उस नौका को भी छोड देना। तव उस भव्य-भवन मे पहुंच जाओगे। इस रूपक से पत्थर की नौका को पाप रूप समझ कर ग्रहण नही करना चाहिये तथा लक्कड़ की नौका-रूप पुण्य के फलस्वरूप शरीर रूपी नौका के माध्यम से ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना कर संसार-रूपी समुद्र को तैरते हुए, केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति होने पर १४ वें गुणस्थान मे इस शरीर-रूप पुण्य को भी छोडकर, मोक्ष अवस्था रूप भव्य-भवन में पहुंच जाना। प्रभु महावीर ने भी शरीर को नाव की उपमा दी है। यथा—शरीर माहु नाव त्ति। (उत्तरा २३/७३)



पाठ ३६

भ० आदिनाथ

रमेश—जयजिनेन्द्र भैय्या सुरेश! यह तो बतलाओ कि "भक्तामर-स्तोत्र" का इतना महत्त्व क्यो?

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश! भक्तामर-स्तोत्र का वास्त-

१–नीतिमान होवे क्योकि नीति धर्म की माता है ।

२–हिम्मती व वहादुर होवे क्योकि कायर व्यक्ति धर्म की आराधना नही कर सकता ।

३–धैर्यवान होवे, किसी भी कार्य मे जल्दी नही करे ।

४–बुद्धिमान होवे, प्रत्येक कार्य सोच-समझकर करे ।

५–सत्यवादी होवे, असत्य से घृणा करे ।

६–निष्कपटी होवे, हृदय स्फटिक रत्नमय साफ होवे।

७–विनयवान होवे, ८ गुणग्राही होवे । ९ प्रतिज्ञा पालक होवे ।

१०–दयालु होवे । ११ सत्य-धर्म का जिज्ञासु होवे ।

१२–जितेन्द्रिय होवे ।

१३–आत्म कल्याण की दृढ इच्छा वाला होवे ।

१४–तत्त्व विचारणा मे निपुण होवे ।

१५–कृतज्ञ होवे अर्थात् जिससे धर्म की प्राप्ति हुई हो, उसका उपकार कभी न भूले । और समय आने पर उपकारी का उपकार करने वाला होवे ।

इनको अपनाने वाला आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है ।



पाठ ३५

पुण्य

रमेश—जयजिनेन्द्र, सुरेश भैय्या ।

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश, आओ भाई, कहो, आज कौनसा विषय छेडा जाय ?

रमेश—उस दिन आपने पाप के विषय मे कहा था—लोग पुण्य की वहुत महिमा बतलाते हैं—यह पुण्य क्या है ।

सुरेश—पाप की तरह पुण्य भी तत्त्व है । कोई भी कार्य करेंगे तो कर्म तो वधेगा ही । अच्छे कार्य अच्छे वचन और अच्छे विचार से पुण्य बंधेगा और बुरे विचार-उच्चारण एव आचरण से पाप कर्म का वध होगा । पाप कर्म के उदय से जीव दुर्गति मे जाता है—सद्गति मे भी दु खी होता है ।

पुण्य कर्म के उदय से जीव सद्गति (मनुष्य और देवगति) मे जाता है । दुर्गति मे भी सुखी देखा जाता है । पर यह सुख वास्तविक नही है । पुण्य-पाप के उदय से जीव सुख के वाद दु.ख और दु ख के बाद सुख अनुभव करता रहता है, और ससार-भ्रमण करता रहता है । किसी गीतकार ने कहा है—

"बड़े भाग्य से मनुष्य-देह मिली है — खा-खा-योनियो की ओर जीव हुआ है लाचार । चोर सीने पे चौरास लाख भिली है ।। वड़े ।।

मेरे बीस है दुकाने, चार कारे, लोग मुझे मील-
मालिक पुकारे, आठ ठेके हैं सरकारी, सात बेटे एक
नारी ॥ चार कुत्ते हैं शिकारी-एक बिल्ली है ॥बड़े॥
धनवान होके खूब इतराया, कहे मैंने दिमाग से कमाया,
उल्टी कर्मों की तस्वीर हो गए पूरे फकीर ।
कहे हाय तकदीर मेरी, ढीली है ॥ बडे ॥"

इस प्रकार पुण्य-पाप के झूले मे जीव ससार में झूलता रहता है। इन दोनो तत्त्वो को कई लोग बन्धन की अपेक्षा लोहे की एव सोने की वेड़ी की सज्ञा देते हैं। यह समझाने की दृष्टि से एक देशीय रूपक है। वस्तुत- पाप तो सर्वथा हेय ही है। पर पुण्य की ज्ञेय, (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) और हेय (छोडने योग्य) तीन अवस्थाए हैं। वैसे हेय तो सभी तत्त्व है क्योकि ज्ञान होने पर ही ज्ञेय और उपादेय का विभाजन किया जा सकता है।

पुण्य में ज्ञेय के साथ उपादेय एव हेय जो बताया है उसका तात्पर्य यह है कि—'साधनावस्था' का पुण्य सहयोगी होता है—क्योकि किसी भी आत्मा ने मनुष्य शरीर के विना मोक्ष प्राप्त नही किया है। 'मनुष्य शरीर' पुण्य का फल है। उस पुण्य के फलस्वरूप शरीर मे रहती हुई आत्मा ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र की पूरिपूर्णता होने पर शरीर को छोड़ देती है। इसलिए पुण्य साधनावस्था मे उपादेय और साधना की परिपूर्णता पर हेय माना गया है। इसको निम्न-रूपक से स्पष्ट समझा जा सकता है:—

किसी पुरुष को समुद्र के दूसरे किनारे पर भव्य भवन मे जाना है—तव वह किसी जानकार व्यक्ति से रास्ता पूछता

है। तब वह जानकार पुरुष उसे बतलाता है कि—"समुद्र के इस घाट पर पत्थर की नौका भी है और लक्कड़ की नौका भी। पत्थर की नौका की तो जानकर उसे छोड़ देना। उसमे आरूढ मत होना। लक्कड की नौका को जानकर उसे ग्रहण करना उस पर सवार हो जाना और समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुंच जाने के पश्चात् उस नौका को भी छोड देना। तब उस भव्य-भवन मे पहुच जाओगे। इस रूपक से पत्थर की नौका को पाप रूप समझ कर ग्रहण नही करना चाहिये तथा लक्कड की नौका-रूप पुण्य के फलस्वरूप शरीर रूपी नौका के माध्यम से ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना कर संसार-रूपी समुद्र को तैरते हुए, केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति होने पर १४ वें गुणस्थान मे इस शरीर-रूप पुण्य को भी छोडकर, मोक्ष अवस्था रूप भव्य-भवन में पहुंच जाना। प्रभु महावीर ने भी शरीर को नाव की उपमा दी है। यथा—शरीर माहु नाव त्ति। (उत्तरा. २३/७३)



पाठ ३६

भ० आदिनाथ

रमेश—जयजिनेन्द्र भैय्या सुरेश! यह तो बतलाओ कि "भक्तामर-स्तोत्र" का इतना महत्त्व क्यो?

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश! भक्तामर-स्तोत्र का वास्त-

विक नाम तो आदिनाथ स्तोत्र है पर इस स्तोत्र का प्रथम शब्द भक्तामर होने से इसे भक्तामर स्तोत्र कहते है ।

प्रथम जिनेन्द्र आदिनाथ श्री ऋषभदेव होने से मुख्य-तया यह आदिनाथ का स्तोत्र कहा जाता है, पर वास्तव मे तो उनके बहाने सभी जिनेश्वरो की स्तुति उस स्तोत्र से हो जाती है ।

मेश—आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव तो प्रथम तीर्थंकर थे—उनके विषय मे कुछ बतलाओ ?

ुरेश—वे वीतरागी, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् थे ।

रमेश—क्या वे जन्म से ही भगवान् थे ?

सुरेश—नही भाई । जन्म से कोई भगवान् नही होता । अपने पुरुषार्थ से वे भगवान् बने । उनका जन्म अयोध्या नगरी (विनीता नगरी) मे पदरहवे कुल-कर राजा नाभि की रानी मरुदेवी के गर्भ से युगल रूप मे हुआ था ।

रमेश—युगलरूप क्या होता है ?

रेश—तुम नही जानते, दो बच्चो का एक साथ जन्म होना युगलरूप कहलाता है ।

रमेश—तो दूसरे भाई का नाम क्या था ?

सुरेश—भाई नही, इनके साथ इनकी बहन का जन्म हुआ था—और वह आगे चल कर इनकी स्त्री हो गई थी ।

रमेश—यह तो उन्होने ठीक नही किया । बहन को स्त्री बना लिया ।

सुरेश—ऐसी बात नही है, उस समय इस प्रकार ही होता था, एक माता-पिता एक लड़के-लडकी को जन्म देते थे । वे भाई-बहन आगे चल कर स्त्री-पुरुष हो जाते थे ।

रमेश—सुना है उनके दो पत्नियां थी ।

सुरेश—हां, एक तो वही जो उनके साथ जन्मी थी—उसका नाम सुमगला था—जिससे भरत आदि ६६ पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई । उस समय वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक अन्य भाई-बहन पर हवा के झपाटे से वृक्ष की डाल गिरने से भाई मर गया । बहन अकेली रह गई उसका नाम सुनदा था । ऋषभदेव ने सुनदा के साथ शादी की, जिससे बाहुबली नामक पुत्र और सुन्दरी नामक पुत्री हुई ।

रमेश—तो क्या भरत और बाहुबली आदिनाथ भगवान् के ही पुत्र थे ?

सुरेश—भगवान् तो वे बाद मे बने । उस समय तो उनका नाम राजा ऋषभदेव था । पहले तीर्थंकर होने से उन्हे आदिनाथ भी कहने लगे ।

रमेश—उन्होने कब तक राज्य किया और भगवान् कब बने ?

सुरेश—उन्होने ८३ लाख पूर्व वर्षों तक राज्य किया ।

उन्होने लोगो को सुख-शांति से रहने के लिए पुरुषों को ७२ कलाएं (विद्या) और स्त्रियों को ६४ कलाए सिखाई ।

रमेश—फिर ?

सुरेश—फिर क्या उन्होंने माता-पिता-परिवार का राग छोडकर साधु जीवन धारण किया । उन्होंने दीक्षा लेते ही तप आरम्भ कर दिया—पारणा मे उन्हें आहार नही मिला—क्योकि लोग आहार की विधि नही जानते थे ।

रमेश—तो क्या वे जन्मभर भूखे रहे ?

सुरेश—नही, दीक्षा लेने के बाद से ४०० दिन के बाद "अक्षय तृतीया" के दिन राजकुमार श्रेयांस के यहां गन्ने के रस से उन्होने पारणा किया । उसी दिन से अक्षय तृतीया का पर्व शुरु हुआ

रमेश—क्या वे दीक्षा लेते ही सर्वज्ञ बन गये ?

सुरेश—नही । वे एक हजार वर्ष तक मौन-साधना करते रहे । एक दिन आत्म-साधना मे तल्लीन बने उस दशा मे उन्हे केवलज्ञान प्रकट हुआ । और वे वीतरागी सर्वज्ञ भगवान् बन गये । उनके तात्त्विक उपदेशो से भव्य जीवो को मुक्ति के मार्ग का ज्ञान हुआ ?

रमेश—तो क्या वे मुझे भी मुक्ति का मार्ग बतावेंगे !

सुरेश—वे तो सिद्ध हो गये । पर उनके बतलाए हुए मार्ग

पर चलकर हम उनके सच्चे भक्त ही नही, भगवान् भी बन सकते है ।

●

पाठ ३७

भगवान् पार्श्वनाथ

रमेश—जयजिनेन्द्र सुरेश भैय्या ! क्या कर रहे हो ?

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश ! मैं भगवान् पार्श्वनाथ जी का स्तोत्र पढ़ रहा हूँ ।

रमेश—भैय्या भगवान् पार्श्वनाथ जी तो तेवीसवे तीर्थंकर हैं न । उनके विषय में कुछ बताओ ?

सुरेश—सुनो । काशी का नाम तो तुमने सुना ही होगा । आजकल उसे वाराणसी (बनारस) कहते है । लगभग तीन हजार वर्ष पहले उसी बनारस नगरी मे राजा अश्वसेन राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम वामा देवी था ।

पौष कृष्णा दशमी को उनके यहा पार्श्वकुमार का जन्म हुआ था । उनके माता-पिता तथा नगर निवासियों के साथ इन्द्रो और देवों ने भी उनका जन्म कल्याण उत्सव मनाया था । पार्श्वकुमार गर्भ-अवस्था से ही अवधिज्ञानी थे । वे अनेक सुन्दर

लक्षणो वाले प्रतिभाशाली, अपार बलशाली और बुद्धि के निधान, आकर्षक बालक थे । यौवन अवस्था मे उनका विवाह प्रभावती नामक सुन्दर कन्या से हुआ । वे आनन्द से राजमहलो मे रह रहे थे । एक दिन उनकी माता नगर मे घूमने को गई, साथ मे पार्श्वकुमार भी थे । वहां एक तापस को धुनी तापते हुए देखा । तब पार्श्वकुमार के मुह से निकला—"अहो कष्टम् ! अहो कष्टम् तत्त्व न ज्ञायते" तब तापस ने कहा क्या कह रहे हो । हम भूत-भविष्य सब जानते है । तब राजकुमार ने कहा—यदि सब जानते हो तो बतलाओ—धुनी में जल रहे लक्कड़ मे क्या है ? तापस—क्या है, कुछ भी नही है अग्नि देवता जल रहे हैं । पार्श्व—नहीं, सन्यासी, जी, नही इसमे तो पंचेन्द्रिय जीव जल रहा है । पर किसी ने उनका विश्वास नही किया । तब उन्होने अपने नौकरो को उस लकडी को सावधानी से चीरने को कहा । उसमें से अधजले नाग-नागिनी निकले । पार्श्वकुमार ने उन्हे नमस्कार-मंत्र सुनाया एव मंगलपाठ सुनाया जिससे प्रतिबोध पा वे, मरकर धरणेन्द्र पद्मावती नामक देव-देवी हुए ।

इस हृदय-विदारक घटना से पार्श्वकुमार बहुत प्रभावित हुए । उन्हें वैराग्य हो गया और पौष कृष्णा एकादशी को वे दीक्षित हो गये । वे मौन रहकर अखण्ड आत्म साधना करने लगे । वह धुनी तापने वाला साधु जिसका नाम कमठ तापस था, मरकर व्यंतर देव हुआ । एक बार मुनिराज

पार्श्वनाथ जंगल मे ध्यान कर रहे थे, तब इस व्यंतर देव ने उनको देखा। देखते ही उसको बैर जगा। उसने इन पर घोर उपसर्ग किया। पानी बरसाया, ओले गिराये, भयंकर तूफान चलाया और पत्थर भी बरसाये। पर ये अपनी साधना से नही डिगे। धरणेन्द्र पद्मावती को उनके उपसर्ग को हटाने का भाव आया और उन्होने उस उपसर्ग को दूर भी किया। चैत्र कृष्णा चतुर्दशी के दिन मुनि-राज पार्श्वनाथ को केवलज्ञान प्रकट हुआ। वह व्यन्तर इनसे क्षमा मागकर चला गया। अन्य सभी देवों और इन्द्रों ने इनके केवलज्ञान प्राप्ति का महो-त्सव मनाया। सत्तर वर्ष तक भव्य जीवो को तत्व का उपदेश देकर अन्त मे सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सम्मेत शिखर पर्वत पर मोक्ष पधारे। इस पर्वत को पारस-नाथ हिल कहते हैं। इसके पास के रेल्वे स्टेशन का नाम भी इनके नाम पर पार्श्वनाथ स्टेशन पड़ा।



पाठ ३८

पाप

रमेश—जयजिनेन्द्र, सुरेश भैय्या !

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश। अरे आज कैसे आए ?

ओ हो अब समझा। आज तो रविवार का अवकाश है ना। मालूम होता है, तुमने अपना समय-चक्र बना लिया। अच्छा, आज किस विषय पर बात-चीत की जाय।

रमेश—सभी लोग पाप का डर बताते है। यह पाप क्या है और कितने प्रकार का है?

सुरेश—हा, हां, पाप से तो डरना चाहिये। पाप से जीव की दुर्गति होती है और वह दुःख भोगता है, बुरे काम को पाप कहते हैं। वे १८ प्रकार के हैं—

१ प्राणातिपात—जीव को सताना, मारना।

२ मृषावाद—झूठ बोलना।

३ अदत्तादान—चोरी करना।

४ मैथुन—अब्रह्मचर्य का सेवन।

५ परिग्रह—आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह कर उन पर ममत्व भाव रखना।

६ क्रोध—गुस्सा करना।

७ मान—अहंकार करना।

८ माया—कपट करना।

९ लोभ—लालच करना।

१० राग—झूठा प्रेम करना।

११ द्वेष—ईर्ष्या करना।

१२ कलह—झगड़ा करना।

१३ अभ्याख्यान—झूठा कलंक लगाना ।

१४ पैशुन्य—चुगली करना ।

१५ पर-परिवाद—निंदा करना ।

१६ रति अरति—बुरे कार्यो मे मन लगाना, अच्छे में नही ।

१७ माया मृषावाद—कपट सहित झूठ बोलना ।

१८ मिथ्यादर्शन शल्य—गलत विचार रखना ।

भले आदमी इन कार्यो से डरते हैं ।

इन कार्यो को करने वाला मरकर पशु बनता है या नरक मे जाता है । अठारहवां पाप मिथ्यादर्शन शल्य तो महा भयंकर पाप है—जिसके छूटे बिना संसार-भ्रमण छूटता ही नही । अपनी आत्मा की सही पहचान ही मिथ्यात्व छोडना है । उसके बाद ही अन्य पाप छूटता है ।

●

पाठ ३९

सात कुव्यसन

रमेश—भैय्या सुरेश ! जयजिनेन्द्र !

सुरेश—जयजिनेन्द्र भाई रमेश ! कहो क्या बात है ?

रमेश—कुव्यसन किसे कहते हैं ? और वे कितने हैं ?

सुरेश—किसी भी विषय मे लवलीन होने को-अर्थात् आदत को व्यसन कहते हैं। बुरे विषयो में लीन होना कुव्यसन है। इससे जीव आकुल-व्याकुल हो जाता है और दुराचरण करता है। वे सात हैं—१ जुआ २ चोरी ३ शिकार ४ मद्य-पान ५ मांस खाना ६ वैश्यागमन ७ परस्त्री-रमण।

१ जुआ-रुपये-पैसे या किसी प्रकार के धन से हार जीत का खेल खेलना-शर्त या दाव लगाकर खेल खेलना जुआ है।

२ चोरी-प्रमाद से विना दी हुई वस्तु लेना चोरी है।

३ शिकार-किसी भी पशु-पक्षी को निर्दय होकर किसी भी शस्त्र से मारकर आनदित होना शिकार है।

४ मद्यपान—शराव, गांजा, भांग आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करना मद्यपान है।

५ मास खाना—पंचेन्द्रिय जीवों के कलेवर खाने को मांस खाना कहते हैं।

६ वैश्या के साथ रमण वैश्यागमन है।

६ परस्त्रीरमण-अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियो के साथ रमण परस्त्री-रमण है। इनको त्यागे विना आत्मा को पहचान नहीं सकता।



पाठ ४०

मै कौन हूं ?

रमेश—भैय्या सुरेश ! कई वार मन मे यह प्रश्न उठता है कि—'मैं कौन हू-मेरा स्वरूप क्या है ? अत. आज बताओ कि मैं कौन हू ?"

सुरेश—"मैं कौन हू" इस प्रकार का सशय करने वाला ही चैतन्य आत्मा है । चैतन्य स्वरूप आत्मा जब तक ससार मे परिभ्रमण करती है, तब तक भिन्न-भिन्न पर्यायो को धारणा करती रहती है । उन्ही पर्यायों के अनुरूप उस चैतन्य देव का नामकरण होता रहता है । यथा-योग आत्मा, उपयोग आत्मा, कषाय आत्मा, नारक आत्मा आदि । वैसे ही मनुष्य पर्याय मे जब वह आती है, तब उस मनुष्य पर्याय को धारण करने वाली आत्मा का नाम सुरेश आदि रखा जाता है । वही आत्मा, जब अध्ययन करती है तब विद्यार्थी आत्मा कहलाती । अध्ययन करने की योग्यता सिर्फ शरीर मे नही, शरीर के माध्यम से आत्मा की है । अतएव विद्यार्थी आदि नाम आत्मा की पर्याय होने से, वह उस मनुष्य की अवस्था रहने वाली होने से, उस नाम से सम्बोधित की जाती है । वैसे ही व्यापार आदि की योग्यता भी चैतन्य आत्मा में ही है न कि आत्माशून्य जड शरीर में । जब तक शरीर मे आत्मा रहती है तभी तक बाल, जवान, और वृद्धत्व आदि पर्याय की सज्ञा वाला चैतन्य देव

है। यदि बाल्यवस्था में ही आत्मा शरीर को छोड़ती है तो वह शरीर न जवान की संज्ञा पायेगा और न वृद्धत्व की। न विद्यार्थी की और न व्यापारी की। वह केवल मुर्दा कलेवर रहेगा। इससे स्पष्ट फलित होता है कि—'रमेश आदि नाम मनुष्य-पर्याय मे रहने वाली आत्मा का है न कि मात्र शरीर का।" इसी मनुष्य-शरीर मे रहती हुई आत्मा शरीर के माध्यम से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करती हुई समग्र कर्मो एवं शरीर से रहित होकर सिद्ध-पर्याय के रूप मे परिणत होकर सिद्ध-पर्याय का नाम धराने लगेगी। अतएव कोई पूछे कि—"तुम कौन हो तो मैं मनुष्य पर्याय को धारण करने वाला चैतन्य देव हू।"



पाठ ४१

दुर्व्यसनों से बचो

दुःख के कारणो पर विचार करे तो सप्त व्यसन भी दुःख के मूल ही हैं। इनका सेवन करने वाले अन्त मे दुःखी ही होते हैं।

जुआ खेलने से ही पाडव और राजा नल दु.खी हुए थे और उन्हें जगलो की खाक छाननी पड़ी थी। शराव पीने वाले और चोरी करने वाले भी दुःखी होते हैं। वेश्या के यहा जाने वाले या पराई स्त्रियों को बुरी नजर से देखने

वाले तो निंदा के पात्र होते ही है। ऐसे लोगो को समाज मे कोई आदर, सम्मान नही मिलता है। ये सब व्यसन ऐसे हैं कि एक बार उनके चगुल मे फस जाने पर फिर उनसे पीछा छुडाना बड़ा मुश्किल हो जाता है। दु ख सामने दिखाई देता हे, फिर भी व्यसनी व्यसन को नही छोडता। मेंढक, सांप के मुंह मे हो और उसके सामने कोई दूसरा कीड़ा आ जाये तो जैसे वह अपनी जीभ बाहर निकाले बिना नही रहता, वैसे ही दुर्व्यसनो का दु खजनक परिणाम भोगने के बाद भी व्यसनी व्यक्ति उनका सेवन किये बिना नही रहता। ये लोग व्यसन के इतने रसिये हो जाते हैं कि इन्हे व्यसन छोडने की बात भी नही सुहाती।

एक आदमी बीमार हो गया। बीमारी असाध्य थी, बचना मुश्किल था। पिता के अन्तिम समय को निकट जान कर लड़के ने पूछा—पिताजी! क्या इच्छा है? कुछ खाना-पीना है या दान धर्म करना है? तब पिता ने कहा—बेटा, मुझे एक सिगरेट दे दे न? बताइये, कैसा शक्तिशाली व्यसन है? प्राण छूट रहे है, पर व्यसन नही छूट रहा है। दुनिया के कई बड़े-बडे डॉक्टरो ने यह कहा है कि बीड़ी-सिगरेट पीने से कैंसर होता है। फिर भी उसे छोड़ने वाले कितने निकले है? व्यसनी मनुष्य खाना छोड सकते है पर व्यसन नही छोड सकते।

सरकार भी धूम्रपान से उत्पन्न होने वाली बीमारियो को जानती है किन्तु वह भी इससे होने वाली आमदनी को देखकर चुप्पी साध लेती है। कई धर्मो के साधु-महात्मा भी इस दुर्व्यसन से ग्रसित दिखाई देते है। केवल जैन साधु

ही ऐसे है, जो इस रोग से सर्वथा मुक्त होते हैं। जो इसका सेवन करते हैं, वे इसका निषेध भी किस मुंह से कर सकते हैं?

इस व्यसन का मनुष्य इतना आदी हो गया है कि उसे इससे मुक्त हो पाना असम्भव-सा लगता है। सुबह उठते ही मुह मे बीडी, शौच जाते समय मुह मे बीडी, पेशाब करने समय बीडी, भोजन के बाद बीड़ी, पानी पीने के बाद बीडी, यार दोस्त मिल जाय तो बीड़ी, भगवान् की पूजा करने से पहले बीडी और बाद मे बीड़ी। यो सर्वत्र बीडी या सिगरेट ही दिखाई देती है। विवाह-शादियो मे भी इसकी धूम रहती है। धूम्रपान मे किसी तरह की मर्यादा या रुकावट नही देखी जाती है। चाहे जहा और चाहे जिसके सामने लोग इसका सेवन करते रहते है। यह व्यसन जीवन के लिए दीमक की तरह होता है। दीमक लग जाने पर लकडी खोखली हो जाती है, उसी प्रकार इस व्यसन से जीवन भी शक्तिहीन बन जाता है। स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पडता है। दात पीले पड जाते है, कठ की नली मे छेद हो जाता है, मुह से दुर्गन्ध आने लगती है, फेफड़े खराब हो जाते है और शरीर का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है।

कहा तो यह भी जाता है कि एक बीडी मे जितनी तम्बाकू होती है, उसका सत निकाल कर यदि सात मेढको को खिलाया जावे तो वे मर जाते हैं। एक सेर तम्बाकू के तेल से हजारो कुत्ते मौत के शिकार हो जाते है। भोजन के बाद तम्बाकू के पत्ते को पेट पर बांध दिया जाय तो तत्काल वमन हो जाता है। तम्बाकू मे इतना जहर होता

है कि भयकर विषैला सर्प भी मर जाता है । सोचिये, घूम्रपान करने वाले इस जहर से कैसे बच सकते हैं ?

धन की हानि तो इससे होती ही है । एक आदमी पच्चीस वर्ष तक सिगरेट पीता है तो उसमे कितना पैसा खर्च हो जाता है ? अगर यही पैसा बचा लिया जाए और किसी भूखे-नगे, गरीब स्त्री-पुरुष को दे दिया जाये तो कितना उपकार हो सकता है ? जिस देश मे लोग दो समय भरपेट भोजन भी नही प्राप्त कर सकते, अपने तन को वस्त्रों से पूरा ढक भी नही सकते, वहा इस तरह का फालतू खर्च अभिशाप ही माना जायेगा ।

मद्यपान भी इसी तरह का दुर्व्यसन है, जो मनुष्य को बेभान बना देता है । अच्छे-बुरे का ज्ञान शराबी को नही होता है । जिस घर मे शराब पी जाती है, उस घर की हालत खराब हो जाती है । उस घर मे न तन ढकने को वस्त्र मिलते हैं और न भूख मिटाने को अन्न । कभी-कभी तो शराब पीने का नतीजा इतना भयंकर निकलता है कि शराबी अपनी जान से भी हाथ धो बैठता है ।

एक गाव की बात है । उस गाव के ठाकुर का जवान लडका शराब पीया करता था । उसकी अभी-अभी नई शादी हुई थी । एक दिन वह शराब पीकर अपने घर मे बैठा हुआ था । नशे मे वह मस्त हो रहा था । इसे कुछ होश तो रहा नही, वह नशे में ही ऊपर से नीचे कूद पडा । फिर क्या था । गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड गये और वह मर गया । सारा वातावरण शोक-ग्रस्त हो गया । उसकी नव-

वधू रोती हुई वहा आई और उससे लिपट कर कहने लगी—मैं इस लाश को तब तक घर से बाहर न निकालने दूंगी, जब तक कि तुम सब शराब न पीने की शपथ नही ले लोगे। मेरे जैसी न जाने कितनी असहाय अबलाओ का इस बुरी आदत ने सुहाग लूटा होगा। मैं अब इसे अपने घर मे नही देखना चाहती। उस बहन की वाणी का इतना प्रभाव हुआ कि लोगो ने शराब न पीने की शपथ ले ली। शराब अपने आप मे बहुत बुरी चीज है। इसे पीकर इन्सान, इन्सान न रह कर हैवान बन जाता है।

दुःख के इन समस्त कारणो को ज्ञान के आलोक मे भलीभांति समझना होगा, तभी जीवन की कंटीली झाडियो के काटे हम निर्मूल कर सकेंगे और जीवन मे सुख के फूल खिला सकेगे।



पाठ ४२

सात्विक आहार

जीवित रहने के लिए भोजन की अनिवार्य आवश्यकता है। बिना खाये कोई भी प्राणी अधिक समय तक जीवित नही रह सकता। मनुष्य की तरह पशु-पक्षियों को भी आहार करना पडता है। लेकिन उनमे मनुष्य की तरह ज्ञान नही होता है। विवेक के अभाव मे वे यह भी नही जान पाते हैं कि हमे क्या खाना चाहिए और क्या नही?

इसलिए विवेकहीन मनुष्य को भी पशु के समान कहा गया है।

दुनियां मे कई प्रकार के खाद्य पदार्थ होते है। जिन्हें हम दो भागो मे बाट सकते है—भक्ष्य और अभक्ष्य। खाने योग्य पदार्थ जिनको खाने से मन मे विकार उत्पन्न नही होते हैं और अधिक जीवों की हिंसा भी नही होती है, वे सब भक्ष्य पदार्थ कहे जाते हैं, जैसे—दूध, दही, घी, गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरी, मक्का, जौ, उड़द आदि। इनके विपरीत जिनके सेवन से मन में विकार उत्पन्न होते हैं और अधिक जीवो की हिंसा होती है वे सब पदार्थ अभक्ष्य कहे जाते है, जैसे—मास-मदिरा आदि। फलो मे भी ऐसे फल नही खाने चाहिए जिनमे कि बीज अधिक हो, जैसे कि बड़, पीपल और गूलर के फल। इन्हे बहुबीजी भी कहते हैं। ऐसे फलों मे जीव अधिक होते है, अतः इनको कभी नही खाना चाहिये। मास और मदिरा की प्राप्ति भी असंख्य जीवो की हिंसा से होती है। इनके सेवन से मन चचल और विकारग्रस्त हो जाता है। अतः ये सर्वथा त्याज्य हैं। आज कल बाजारो मे ऐसी औषधियां भी बहुत बिकती हैं, जिनमें मदिरा, स्प्रिट, चरबी आदि मिली रहती है। कई औषधियां तो जानवरो को मार कर तैयार की जाती है, जैसे कि मछली का तेल आदि। कुछ खाद्य पदार्थ ऐसे भी बनाये जाते है जिनमे कि अण्डों का रस मिला हुआ होता है। ये सब अभक्ष्य हैं। बिना सोचे-समझे जो सेवन करने लग जाते हैं वे फिर इनके आदी बन जाते हैं। बिना खाये-पीये उनका शरीर काम नही देता है। ऐसी पराधीनता से भी क्या लाभ?

उत्तेजक पदार्थों के सेवन से पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अत. शुद्ध और सात्विक आहार ही मनुष्य के लिए उपयोगी है। इसीलिये सभी धर्मो के बडे-बडे नेताओं ने भी मांसाहार का निषेध किया है। मासाहार से मनुष्य क्रूर और निर्दयी बनता है। स्वास्थ्य पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके सिवाय अधिक मिर्च-मसाला, खट्टा-मीठा और चटपटा खाना भी अच्छा नही होता है। जो जल्दी हजम न हो सके, ऐसा गरिष्ठ भोजन भी नही करना चाहिये। ठडी-बासी रोटी जिसको तोड़ने पर लार निकलती हो, वह भी अभक्ष्य है। बहुत दिनो की मिठाई भी अभक्ष्य हो जाती है। इसी तरह सडे-गले फल और अनजाने फल भी अभक्ष्य समझने चाहिये क्योकि उनमे जीव पैदा हो जाते है। भोजन का सम्बन्ध केवल स्वाद के लिये ही नही है, उसका मुख्य काम शरीर को सबल बनाना और उसे फुर्तीला रखना है। शाकाहार से शरीर स्वस्थ रहता है और उसके सेवन से दीर्घायु बना जा सकता ।

प्रश्नावली

१. मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर है?

२ भक्ष्य और अभक्ष्य किसे कहते है ?

३. कौनसे फल नही खाने चाहिये ?

४. मादक पदार्थो से क्या हानियां होती है ?

५. भोजन कैसा होना चाहिये ?



पाठ ४३

माता-पिता की सेवा

संसार मे माता-पिता का पद बहुत ऊंचा है । इस पद की तुलना किसी दूसरे उच्च पद से नही की जा सकती है । अपनी सतान पर माता-पिता का महान् उपकार होता है।

समझलो, हमारे माता-पिता यदि हमे अपने घर से बाहर निकाल दें तो हमारा कैसा बुरा हाल हो ? हम बीमार हो जाये और वे हमारी देख-भाल न करें तो क्या हम असमय मे ही मौत के मुह मे न चले जाय ? वे हमे न पढाये तो हम शिक्षित और संस्कारी कैसे बने ? इस तरह कदम-कदम पर उनकी सहायता हमे न मिले तो हमारा जीना ही कठिन हो जाता है ।

हमारे माता-पिता हमे खाने को देते है, पहनने को कपडा देते हैं, हमारी सुख-सुविधा के लिए सब साधन जुटाते हैं, गर्मी-सर्दी झेलकर भी वे हमारी सब तरह से रक्षा करते है । हमारे माता-पिता इतने दयालु है कि वे हमको अपना सर्वस्व दे देते हैं । उनका हम पर बड़ा प्रेम होता है । उनके उपकार का बदला हम किसी भी हालत मे चुका नही सकते हैं । हमें तो बस यही काम करना चाहिए कि सदैव उनकी आज्ञा माने । हमें उनकी सेवा करनी चाहिए और जिस तरह भी वे खुश रहे, वही करना चाहिए । ससार मे जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, वे सब अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करते थे । जो अच्छे लड़के होते है, वे अपने

माता-पिता की सेवा अवश्य करते है। अभिभावको की आज्ञा का तो पशु भी पालन करते है। बन्दर मदारी का कहना मानता है, गाये, भैसे ग्वाले की आज्ञा मानती हैं और गधा भी अपने मालिक का कहना मानता है। हम तो मनुष्य हैं, पशुओ से ज्यादा समझदार है। हम अपने माता-पिता की आज्ञा को न मानेंगे तो यह कितनी बुरी बात होगी ? माता-पिता की आज्ञा न मानना और उनको दु:खी करना ससार मे बहुत बड़ा पाप माना गया है। जो बालक-बालिकाए अपने माता-पिता का आशीर्वाद ग्रहण करते है, वे सदैव आनन्द मगल मे रहते हैं।

प्रश्नावली

१. माता–पिता का हम पर क्या उपकार है ?

२ पशु और मनुष्य मे क्या अन्तर है ?



पाठ ४४

चण्डकौशिक का उद्धार

भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक दिन श्वेताम्बिका नगरी की ओर पधार रहे थे। जिस मार्ग से वे प्रस्थान कर रहे थे, वह मार्ग बडा बीहड़ तो था ही, उस समय मार्ग पर एक भयंकर सर्प रहता था, जिसे लोग चण्डकौशिक के नाम से पुकारते थे। उस सर्प की दृष्टि मे ही इतना विष था कि वह जिस किसी को भी अपनी नजर

से देख लेता वह तत्क्षण धराशायी हो जाता था। सैकड़ों व्यक्ति और पशु-पक्षी उसके शिकार हो चुके थे। अतः वह जहां रहता था, उस मार्ग पर कोई नही जाता था। भगवान् को उस मार्ग पर जाते हुए देखा तो कुछ लोगों ने उन्हे जाने से मना किया। पर भगवान् उनकी बाते सुन कर भी अपने मार्ग पर आगे बढ गये। वे उपसर्गो से भय-भीत होने वाले नही थे। वे उस निर्जन स्थान मे जा पहुचे जहा उस सर्प का बिल था। सुवह का समय था। सर्प भी अपने विल से निकल कर बाहर ही बैठा था। उसने किसी के आने की आहट सुनी तो उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत दिनो बाद आज इस मार्ग पर आने की हिम्मत किसने की है। क्या वह मुझे नही जानता? इतने मे ही भगवान् उस सर्प के सामने आकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सर्प ने सूर्य की ओर देखा और अपने भयंकर विप की ज्वाला भगवान् पर छोड़ी। चारो तरफ धुआ ही धुआ फैल गया पर भगवान् पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। वे अपने ध्यान मे तल्लीन बने रहे। अपने अचूक विष का भी जब उन पर कोई प्रभाव नही हुआ तो सर्प और अधिक आग-बबूला हो गया। वह भगवान् के पास आया और उनके पैर के अंगूठे को डस लिया। रक्त की धार वह निकली। दूध की तरह वह उस मधुर रक्त का पान करने लगा। उसे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे विष का इन पर असर क्यो नही हो रहा है? मौका देखकर भगवान् ने कहा—चण्डकौशिक! समझ! समझ!! अपने पूर्व जीवन मे तू क्या था और अभी क्या कर रहा है? क्रोध

का जहर उगलना बन्द कर समता भाव से रमण करना सीख लेगा तो तेरा उद्धार हो जायेगा ।

सर्प के कानो मे जब ये शब्द टकराये तो वह विचार-मग्न हो गया। फलस्वरूप उसे जाति स्मरण ज्ञान पैदा हो गया । तब उसने जाना, ये तो चौबीसवे तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर हैं । मैंने इनको कष्ट पहुचा कर घोर अपराध कर डाला है । कैसे मैं इससे मुक्त हो सकू गा ? वह भगवान के पैरो मे लोटने लगा और अपने अपराध की क्षमा मागता हुआ अपने बिल मे चला गया । उसने अब किसी को काटना तो दूर रहा, सताना भी छोड दिया । अपने शरीर की ममता भी उसने छोड दी और अनशनपूर्वक रहने की प्रतिज्ञा ग्रहण करली ।

भगवान् महावीर इस सर्प को प्रतिबोध देकर वापस लौटे तो लोगो को बहुत आश्चर्य हुआ । भयंकर विषधर का इस प्रकार शात हो जाना सचमुच ही एक अनोखी घटना थी । कुतूहलवश कुछ लोग सर्प के बिल के पास भी चले गये । देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । सर्पराज अपना मुंह बाबी में डाले हुए शांत भाव से पड़ा था । जनता में इससे हर्ष की लहर दौड गई । सैकडो व्यक्ति अब उसकी पूजा करने के लिए वहा आने लगे और दूध, दही, खांड आदि उस पर चढाने लगे । गन्ध से कई चीटियां वहां जमा हो गई और वे उस सर्प के शरीर को काटने लगी । चण्डकौशिक को इससे अपार वेदना हुई परन्तु वह हिला-डुला नही और शांत भाव से वेदना को सहन करता रहा । अन्त मे वह मरकर देव-योनि मे उत्पन्न हुआ ।

प्रश्नावली

१. चण्डकौशिक कैसा सर्प था ?

२. भगवान् महावीर ने उससे क्या कहा ?

३. चण्डकौशिक की मृत्यु कैसे हुई ?



पाठ ४५

प्रार्थना

जिनदेव तेरे चरण मे मुझको परम विश्वास हो ।
जीवन–समर मे हे प्रभो ! बस एक तेरी आश हो ॥

कर्त्तव्य के पथ से जो डिगाने विघ्नगण आवे मुझे ।
सन्तोष श्रद्धा अरु दया का मंत्र मेरे पास हो ॥

निज भाव भाषा देश का गौरव मुझे दिन रात हो ।
निज धर्म हित यह प्राण हो अरु मन कभी न निराश हो ॥

सब विश्व मे ऐसी वहा दूं प्रेम की मदाकिनी ।
दिल मे तड़फ हो प्रेम की अरु प्रेम जल की प्यास हो ।

संसार सागर मे न भटके नाव मेरी वीच में ।
मैं खुद खिवैया वन सकूं वह शक्ति मेरे पास हो ।

मैं वालपन मे ब्रह्मचारी रह सभी विद्या पढ़ूं ॥
यौवन दशा मे शुद्ध श्रावक–धर्म का अभ्यास हो ॥

यह आतमा ही बन सकी है वीर ! खुद परमातमा ।
हे नाथ ! मेरी आतमा का अन्त मोक्ष-निवास हो ।।

सद्गुरु चरण मे नित्य होवे, भाव-भीनी वन्दना ।
जिन-धर्म पर श्रद्धा-समन्वित विश्व में विश्वास हो ।।



पाठ ४६

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवो को मोक्ष–मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ।।१।।

विषयों की आशा नही जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन मे जो, निस-दिन तत्पर रहते हैं ।।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते है ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दु:ख समूह को हरते हैं ।।२।।

रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे ।
उनही जैसी चर्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।।
नही सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करूं ।
परधन वनिता पर न लुभाऊ, संतोषामृत पिया करूं ।।३।।

अहंकार का भाव न रखूं, नही किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्याभाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहा तक इस जीवन में, औरो का उपकार करूं॥४॥

मैत्री-भाव जगत में मेरा, सब जीवो पर नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतो पर, क्षोभ नही मुझको आवे॥
साम्यभाव रखू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥५॥

गुणी जनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊं नही कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षों तक जीऊ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥७॥

होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावे।
पर्वत-नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग मे, सहनशीलता दिखलावे॥८॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।

वैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञानचरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे ॥९॥

ईति भीति व्यापे नही जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे ।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नही, कोई मुख से कहा करे ॥
बन कर सब 'युग वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे ।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से,सब दु ख संकट सहा करे ॥११॥



पाठ ४७

महावीर का सन्देश

यही है महावीर सन्देश ।
मनुज मात्र को तुम अपनाओ, हर सब के दुःख क्लेश ।
विरुद्धभाव रखो न किसी से, हो अरि क्यों न विशेष
यही है महावीर सन्देश ॥१॥

वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि विशेष ।
वैर छूटे उपजे मति जिससे, यही यत्न, यत्नेश ॥२॥

घृणा पाप से हो, पापी से नही, कभी लवलेश ।
भूल सुझा कर प्रेम मार्ग से, कहो उसे पुण्येश ॥३॥

तज एकान्त कदाग्रह, दुर्गुण, बनो उदार विशेष ।
रह प्रसन्न चित्त-सदा करो तुम, मनन तत्त्व उपदेश ॥४॥

जीतो राग-द्वेष, भय-इन्द्रिय, मोह कषाय अशेष ।
धरो धैर्य समचित्त रहो अरु, सुख-दुःख मे अविशेष ॥५॥

वीर उपासक बनो सत्य के, तज मिथ्याभिनिवेष ।
विपदाओ से मत घबराओ, धरो न कोपावेश ॥६॥

सत्ज्ञानी-समदृष्टि बनो अरु तजो भाव सक्लेश ।
सदाचार पालो दृढ होकर, रहे प्रमाद न लेश ॥७॥

सादा रहन-सहन भोजन हो, सादा भूषा वेश ।
विश्व प्रेम जागृत कर उर मे, करो कर्म निःशेष ॥८॥

हो सबका कल्याण, भावना ऐसी रहे हमेश ।
दया लोक-सेवा दत्तचित्त हो, और न कुछ सन्देश ।
यही है महावीर सन्देश । धन्य है महावीर सन्देश ॥९॥



पाठ ४८

सन्त-मन

मधुर मधु सुधा से, नीम जैसे कटु है,
कठिन कुलिश जैसे, पुष्प जैसे मृदु हैं ।

रजकण सम छोटे, शैल जैसे बड़े है,
चकित जगत है, ये सत कैसे घड़े है।

प्रिय सुत वनिता {का, सर्वथा मोह छोडा,
अतुल धन धरा से भी स्व-सम्बन्ध तोडा।

सुध-बुध निज भूले मस्त हो घूमते हैं,
पतित जगत-जीवो को सदा तारते हैं।

कठिन शब्दार्थ

मधुर = मीठा, मधु = शहद, सुधा = अमृत, कुलिश = वज्र, पुष्प = फूल, मृदु = कोमल, शैल = पर्वत, सुत = लडका, वनिता = स्त्री, पतित = गिरे हुए।



पाठ ४६

आत्म-जागरण

उठ भोर भई टुक जाग सही,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।
अब नीद अविद्या त्याग सही,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु ॥१॥

जग जाग उठा, तू सोता है,
अनमोल समय यह खोता है।

तू काहे प्रमादी होता है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु ॥२॥

यह समय नही है सोने का,
है वक्त पाप-मल धोने का ।
अरु सावधान चित्त होने का,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु ॥३॥

तू कौन, कहा से आया है,
अब गमन कहा मन भाया है !
टुक सोच यह अवसर पाया है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु ॥४॥

रे चेतन ! चतुर हिसाब लगा,
क्या खाया, खरचा लाभ हुआ ?
निज ज्ञान जगा तू, सम्भाल हिया,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु ॥५॥

गति चार चौरासी लाख रुला,
वह कठिन-कठिन शिव राह मिला
अब भूल कुमार्ग विषै मत जा,
भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ॥६॥

△

पाठ ५०

भगवान् बनेंगे

सम्यग् दर्शन प्राप्त करेंगे, सत्कर्मों से नही डरेंगे,
नव तत्वो का ज्ञान करेंगे, जीव अजीव पहचान करेंगे ।
स्व पर भेद विज्ञान करेंगे, निजानन्द मे रमण करेंगे,
परमेष्ठी का ध्यान करेंगे, गुरुजन का सम्मान करेंगे ।
जिनवाणी का श्रवण करेंगे, पठन करेंगे, मनन करेंगे,
रात्रि भोजन नही करेंगे, विना छना जल नही पीयेंगे ।
निज स्वभाव को प्रकट करेंगे, मोह भाव का नाश करेंगे,
राग–द्वेष का त्याग करेंगे, और अधिक क्या ?
बोलो वालक भक्त नही, भगवान् वनेंगे ।



पाठ ५१

मेरा नाम

सच्चिदानन्द है मेरा नाम, स्वरूप-रमण है मेरा काम ।
पाता जहा पूर्ण विश्राम, सिद्धपुरी है मेरा धाम ।।
जहां जन्म और जरा नही है, भूख-प्यास का काम नही है ।
रोग-शोक जुखाम नही है, दुःख-दारिद्रय का काम नही है ।।
नहीं जहां पर कर्म अरु काया, नही सताती मोह अरु माया ।
नहीं भेद जहां चाकर-ठाकर, नही मरण है भय और आदर ।।

सुखदाई है मेरा धाम, नही रंच भी दु.ख का काम ।
सत् शिव सुन्दर मेरा धाम, नहीं ऐसा कही और मुकाम ।।

निज आतम का ध्यान धरेंगे, स्वपर-भेद विज्ञान करेंगे ।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे, चिदानन्द-रस-पान करेंगे ।।



ठठ्ठा ये ठाठ निकम्मा ठाठ बिगडता देर नही,
ठाठ देख जरा शिवपुर का जहा क्षुधा वेद व प्यास नही ।

जन्म-जरा और काय बुढापा, रोग-शोक वियोग नही,
सदाकाल एक – सा वर्ते – दिन रैन – अन्धेर नही ।

वो सभी को देख रहे है, नेकी-बदी से काम नही,
सद्गुरु के हुक्म से कहूं तुझे, किसी को दुआ सलाम नही ।

●

पाठ-५२

शास्त्रीय गाथा

'अप्पाचेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो,
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ।'

अपनी आत्मा का ही दमन करना चाहिये क्योकि उसका दमन करना बड़ा कठिन काम है। आत्मा का दमन करने वाला आदमी इस लोक में और परलोक मे भी सुखी होता है ।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।।

युद्ध क्षेत्र मे लाखो योद्धाओ की विशाल सेना को जीतना बडा कठिन कार्य है परन्तु उससे भी कही अधिक मुश्किल तो आत्मा पर विजय प्राप्त करना है और यही आत्म-विजय सर्वश्रेष्ठ हैं ।

●

पाठ ५३

यह आत्मा हमारा

दुनिया मे सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा ।
सब जानन-देखन हारा यह आतमा हमारा ।। १ ।।

यह जले नही अग्नि में, भीगे न कभी पानी मे ।
सूखे न पवन के द्वारा, यह आत्मा हमारा ।। २ ।।

शस्त्रो से कटे नही काटा, कोई तोड सके नही भाटा ।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा ।। ३ ।।

मां-बाप सुता नर-नारी, सब मतलब के संसारी ।
देता ना कोई सहारा, यह आतमा हमारा ।। ४ ।।

मत फसे मोह ममता मे, तू आजा निज आपा मे ।
तन-धन कुछ नही हमारा, यह आतमा हमारा ।। ५ ।।

कुछ रूप-रंग नही इसका, नहि तनिक स्पर्श भी जिसका ।
नहि मीठा है नहि खारा, यह आत्मा हमारा ।। ६ ।।

छोटा न बड़ा है भाई, सब ज्योत मे ज्योत समाई ।
नहिं पुद्गल का परिवारा, यह आत्मा हमारा ।। ७ ।।

कैसे पहिचान बतावे, शब्दो से कहा नहिं जावे ।
महिमा अपरंपारा, यह आत्मा हमारा ।। ८ ।।



पाठ ५४

बाल सभा

(माध्यमिक-शाला के बालको ने एक बाल-सभा का आयोजन किया । ठीक समय पर सभी छात्र-छात्राए सभा स्थल पर पहुंच गये । उन्होने अपने मे से ही एक को सभा का अध्यक्ष बनाया । वह कुर्सी पर बैठा है । शेष सभी सामने बैठे हैं ।)

अध्यक्ष—(खड़े होकर) अब आपके सामने गुणवत को विचार प्रस्तुत करने आमन्त्रित करता हू ।

गुणवत—(टेबल के पास खड़े होकर)

मानतीय अध्यक्ष महोदय मेरे प्यारे छात्र-छात्राओ एवं अन्य उपस्थित सज्जनो !

आत्मा सत् चित आनन्दमय है, उसका स्व-भाव जानना देखना है । राग-द्वेष और कषाय उसके स्वभाव से विपरीत है इसलिए उन्हें विभाव कहते हैं ।

किसी वस्तु को अच्छी जानकर उसे चाहना

राग कहलाता है और बुरी जानकर दूर करना द्वेष और जो आत्मा को कैसे दुःख दे उसे कषाय कहते हैं। कषाय याने संसार, आय यानें प्राप्ति। जिससे संसार बढे उस क्रिया को कषाय कहते हैं।

गुस्सा करना क्रोध कषाय है। अभिमान घमण्ड करना मान कषाय है। छल–कपट करने को माया कषाय कहते हैं। और कोई चीज देखी कि यह मुझे मिल जाय ऐसी भावना लोभ कषाय से आती है। जब हम ऐसा मान लेते हैं तो आत्मा मे क्रोध पैदा होता है कि इसने मेरा बुरा किया और जब हम यह मान लेते हैं कि दुनिया की सभी वस्तुएं मेरी है, मैं इनका स्वामी हूं तो मान हो जाता है। कहना कुछ और करना कुछ ऐसी प्रवृत्ति को माया कहते हैं। मायाचारी मरकर पशु होता है और माया छल कपट लोभी जीवों की होती है। उल्टी मान्यता के कारण पर–पदार्थ इष्ट या अनिष्ट मालूम होते हैं, इसी कारण कषाय उत्पन्न होती है।

तत्वज्ञान के अभ्यास से पर पदार्थ न तो अनुकूल मालूम होते है, न प्रतिकूल, तब न तो राग-द्वेष होता न कषाय ही। हमे भी तत्त्वज्ञान का अभ्यास करना चाहिये, जिससे कषाय मिटे, और ज्ञान बढ़े। हमें जिद्द भी नही करनी चाहिये। जिद्दी बालक की दशा कैसी होती है?

उसे एक छोटी–सी कहानी से समझें। एक वालक वहुत हठी था। वह खाने-पीने का बहुत लोभी भी था। जरा-जरा सी बात पर वह घर मे सबसे लड़ा करता था। वह किसी की नही मानता था।

एक दिन उसके घर मे मिठाई बनी। मा ने सब बच्चो को बराबर बाट दी। मिठाई पाकर सब खुश होकर खाने लगे पर वह जिद्दी वालक कहने लगा कि "मुझे सबसे छोटा लड्डू दिया तब तक तो दूसरे बच्चे लड्डू खा चुके थे, नही तो उनसे बदल भी देते। उसे क्रोध आ गया जोर-जोर से रोने लगा, लड्डू भी फेंक दिया, दिन भर खाना भी नही खाया और कोने मे लेट गया। रात हो गई, घर के लोगो ने उसे मनाया भी। वह जिद्दी था, नही माना। कोने मे बिच्छू था–उसने उसे काट दिया। दिन भर भूखा रहा। बिच्छू ने काटा सो अलग। लड्डू भी कुत्ता ले गया। क्रोधी-मानी-हठी और लोभी की यही दशा होती है। इसलिए हमे क्रोध, मन, माया, लोभ और जिद्द नही करना चाहिये। इतना कहकर मैं अपना स्थान ग्रहण करता हू। आप लोगो ने शाति से मुझे सुना। धन्यवाद।

अध्यक्ष—(खड़े होकर) "भाई गुणवंत ने कैसी ज्ञान की वात बताई। अब मैं सुशीला को आमन्त्रित करता हू कि वह अपने विचार प्रस्तुत करे।"

सुशीला – आदरणीय अध्यक्ष महोदय भाइयो और बहिनो !

जीवन सफल बनाना, अच्छी सुघड बहिन जी ।
कर्त्तव्य ना भुलाना, अच्छी सुघड बहिन जी ।।
कई जीव जन्तु होते, कड-लकडियों मे ।
देखे बिना कभी भी, चूल्हे मे मत जलाना ।। १ ।।

कई दिन की पीसी चीजे, पड जाते जीव जिनमे
खाने से रोग होते, नहि ऐसी वस्तु खाना ।। २ ।।

दालें या शाक-सब्जी, बैसन या आटा चावल ।
जिनमे लटे पड़ी हो, उनको नही पकाना ।। ३ ।।

आचार या मुरब्बे, शरबत या और चीजे ।
रस से चलित जो हो गई, उनमे नही लुभाना ।। ४ ।।

रात्रि मे तुम न खाना, अनछाना जल न पीना ।
बिना देखी वस्तु कोई, तुम काम मे न लाना ।। ५ ।।

चौदस व अष्टमी को, और पर्व के दिनो मे ।
शाके हरी न खाकर, श्रावकपना निभाना ।। ६ ।।

खुलते ही आंख पहले, नवकार मंत्र पढना ।
प्रभु-भक्ति करके निरुपम, भव-भव मे शांति पाना ।।७।।

नानेश चरण नमकर, स्वाध्याय-सूर्य ध्याकर ।
अध्यात्म रूप अमृत, सम्पत सहर्ष पाना ।। ८ ।।

इस गीतिका मे हमे व्यावहारिक–जीवन के लिए उद्बोधन दिया गया है । घर की साफ–सफाई के लिए नरम बुहारी काम मे लेनी

चाहिए, जिससे जाले आदि भी साफ हो जाय, और जीव-जन्तु भी न मरे, पानी छानने के लिए एक हाथ लम्बा – चौडा लोन का कपड़ा काम मे लेना चाहिए, जिससे पानी सही रूप मे छन सके। पानी छानने के बाद छन्ने को वही निचोड़ना नही चाहिये, बल्कि उसमे यदि कोई बारीक सूक्ष्म जन्तु जिन्हे फु हारे भी कहते हैं,आ जाय तो यतना और विवेक पूर्वक उन्हे उतारकर पानी वाले स्थान मे डालने से वे मरते नही हैं।

चलते हुए नीचे देखकर चलना चाहिये। कहा भी हैं-

नीचे देखे बहुत गुण, जीव-जन्तु बच जाय।
ठोकर की लगती नही, गुमी वस्तु मिल जाय ॥

चूल्हा-स्टॉव-गैस आदि जलाने के पहले मुलायम बुहारी से साफ करने से प्राणियो की रक्षा होती है और अन्य बाते जो इस गीतिका में दर्शाई गई है वे सरल हैं। उन पर विस्तार से कहने की आवश्यकता प्रतीत नही होती, आप स्वयं सुज्ञ हैं। हां, एक बात विशेष रूप से ध्यान दिलाने की है—"रात्रि भोजन नही करना चाहिये।" उससे कैसी भयकर हानि होती है, उसे इस कहानी से समझना चाहिये।

एक गाव मे एक बारात आई थी, उसके लिए रात मे भोजन बन रहा था। अन्धेरे के कारण शाक मे एक साप गिर गया। बराती

भोजन करने लगे पर चार-पाच आदमी बोले भाई ! "हम तो रात्रि मे नही खाते ।" सब बरातियों ने उनकी खूब मजाक उडाई । "बडे धर्मात्मा बने है - रात मे भूखे रहेगे तो सीधे स्वर्ग जावेंगे ।" पर हुआ यह कि "भोजन करते ही लोग वेहोश होने लगे । दूसरो को स्वर्ग भेजने वाले खुद स्वर्ग की तैयारी करने लगे । उन पांचो ने इन बेहोश व्यक्तियो को शीघ्र ही अस्पताल पहुंचाया । उपचार से मुश्किल से आधे बच पाये । यदि वे पांचो भी रात मे खाते तो एक भी नही बचता । इसलिए किसी को भी रात्रि मे नही खाना चाहिये । इतना कह-कर मैं अपना स्थान ग्रहण करती हूं ।

राजेश—(अपने स्थान पर खडे होकर) क्यो बहिन सुशीला, रात्रि-भोजन मे और भी दोष है ?

अध्यक्ष—(खड़े होकर) राजेश ! आप बैठ जाइये । क्या आप सभा के नियम नही जानते कि "कोई आवश्यक बात पूछनी ही हो तो अध्यक्ष की आज्ञा लेकर पूछना या बोलना चाहिये ।"

हां, यह प्रश्न आ ही गया है तो मैं बहिन सुशीला से अनुरोध करूंगा कि—"वे इसका उत्तर दे ।"

सुशीला—(खडे होकर) हा-हां, इसके अतिरिक्त रात्रि-

भोजन मे आसक्ति होने से राग बढता है और राग-भाव आत्म-साधना मे बाधक हैं।

अध्यक्ष—(खड़े होकर) सुशीला बहिन ने कितनी सुन्दर बात बतलाई। हम सबको यह निर्णय कर लेना चाहिये कि आज से रात्रि मे भोजन नही करेंगे; बिना छना पानी नही पीयेंगे। जिस भोजन में जीव-जन्तु पड गये हों उसे नही खायेंगे। क्रोध, मान, माया, लोभ पर नियन्त्रण करेंगे। नमस्कार मन्त्र का ध्यान करेंगे। घर मे बडो को प्रणाम करेंगे। प्रतिदिन १ से १५ मिनिट कुछ न कुछ धार्मिक पठन करेंगे। खाना-पीना उठना-बैठना बोलना आदि सभी काम यतना विवेक पूर्वक करेंगे। आप लोगों मे से और भी बहुत से बालक-बालिका बोलना चाहते है पर समय बहुत हो गया है। अतः उनसे क्षमा मांगता हुआ मैं आज की सभा समाप्त करता हूं। (भगवान् महावीर की जय बोलते हुए सब बच्चे अनुशासन पूर्वक अपने-अपने घर को जाते हैं।)

●

पाठ ५५

गुरु-स्तुति

गुरुदेव, तुम्हे नमस्कार बार-बार है।

श्री चरण-शरण मे हुआ जीवन सुधार है॥

अज्ञान-तम हटा के ज्ञान-ज्योति जगादी।

दृढ आत्म-ज्ञान मे अखण्ड दृष्टि लगादी ॥
उपदेश-सदाचार सकल शास्त्र सार है ॥१॥

विधियुक्त सिर झुका के कर रहे हैं वंदना ।
अब हो रही मगलमयी सद्भाव-स्पदना ॥
माधुर्य से मिटा रही धन का विकार है ॥२॥

यह है मनोरथ नित्य रहे सत-चरण मे ।
अन्तिम—समय समाधि-मरण चार शरण मे ।
यह सूर्य—चन्द्र मोक्ष-मार्ग मे विहार है ॥३॥



पाठ ५६

भ० नेमिनाथ

रमेश—इक्कीसवें तीर्थंकर तो नमिनाथ थे, फिर ये नेमिनाथ कौन थे ?

सुरेश—नेमिनाथ बाइसवे तीर्थंकर थे । कही भूल न हो जाय इसलिए इनको अरिष्टनेमि भी कहते है ।

रमेश—इनके बारे में कुछ प्रकाश डालो ?

सुरेश—सुनो।सौरीपुर के राजा समुद्र विजय के पुत्र राजकुमार श्री नेमिकुमार थे । इनकी मा का नाम शिशादेवी था । श्री कृष्णजी इनके चचेरे भाई थे । इनकी सगाई जूनागढ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ कर दी गई थी । जब इनकी बारात जूना—

गढ मे पहुंची, तव वाडे मे रोते-चिल्लाते हुए मूक पशुओं को देखकर ससार का स्वार्थपन और निर्दयता लक्ष्य में आते ही श्री नेमिकुमार को संसार से विरक्ति हो गई। अनुकम्पा भाव से उन जीवों को अभय किया। वे आत्मज्ञानी तो थे ही, वर्षी-दान देकर उन्होने माता-पिता आदि वाह्य परिग्रह और राग-द्वेष आदि आन्तरिक-परिग्रह का त्याग किया और गिरनार की तरफ चले गये। इसलिए कहा जाता है कि—"वे पत्नी राजीमती को छोडकर चले गये।

रमेश—फिर राजीमती की शादी.. ....?

सुरेश—राजीमती भी समझदार राजकुमारी थी। इस घटना के निमित्त से उसकी आत्मा को भी वैराग्य हो गया। माता-पिता के समझाने पर भी वे दूसरे राजकुमार के साथ शादी करने को सहमत नही हुई। गिरनार की गुफाओ मे शाति से आत्म-साधना करने वाले नेमिनाथ की तरह राजीमती भी साध्वी बनकर आत्म-साधना मे लीन हो गई। साधु बनने के ५६ दिन बाद ही श्री नेमिनाथ ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और एक हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर आज से लगभग ८६५०० वर्ष पहले मुक्ति प्राप्त की। इनके मोक्ष जाने के ५४ दिन पहले ही राजीमती मोक्ष मे चली गई।

●

पाठ ५७

पंच परमेष्ठी

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणम्,
णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण,
णमो लोएसव्वसाहूणं ॥

यह पच नमस्कार मन्त्र है। इनमे सबसे पहिले पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी अरिहंत भगवतो को और सिद्ध भगवंतो को नमस्कार किया गया है। उसके बाद वीतराग-मार्ग पर चलने वाले आचार्य मुनिराज, उपाध्याय मुनिराज और सामान्य मुनिराजो को नमस्कार किया गया है।

इन पाचो को पंच परमेष्ठी कहते हैं—क्योकि ये पांचों परम पद हैं।

प्रश्न—अरिहत किसे कहते हैं?

उत्तर—जिन्होने निज स्वभाव-साधना द्वारा चार घातिकर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय) को क्षयकर, अनन्त चतुष्टय (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य) रूप आत्मशक्ति को प्रकट कर लिया है, और भव्य-प्राणियो के कल्याणार्थ ग्राम नगर-पुर-पाटन देश में विचरण करते हुए उपदेश देते है, वे अरिहंत कहलाते हैं।

प्रश्न—सिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—अरिहंत पद को प्राप्त कर कुछ समय बाद शेष कर्मो (अघाति कर्मो—वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र) के नाश होने पर शरीर आदि का पूर्ण रूप से सम्बन्ध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये हैं। लोक के अग्रभाग मे ये विराजमान हैं। आठ कर्म नष्ट होने से उनमे निम्न आठ गुण प्रकट हो गये हैं—१. अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन ३. अनन्त सुख ४ क्षायिक सम्यक्त्व (चारित्र) ५. अटल अवगाहन ६ अगुरुलघु ७ अनन्त वीर्य ८ अमूर्तत्त्व।

प्रश्न—अरिहन्तो मे कितते गुण प्रकट हुए ?

उत्तर—अरिहन्तो मे निम्न बारह गुण प्रकट हुए—
१ अनाश्रवत्व २ अममत्व ३ अकिंचनत्व ४ छिन्नशोक ५ निरुपलेप ६ व्ययगत प्रेम, राग-द्वेष मोह ७ निर्ग्रन्थ प्रवचनोपदेशक ८ शास्त्रनायक ९ अनन्तज्ञानी १० अनन्तदर्शनी ११ अनन्त चारित्री १२ अनन्तवीर्य

प्रश्न—आचार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय की अधिकाधिक आराधना से प्रधान पद प्राप्त करके चतुर्विध संघ के नायक हुए हैं और करुणाभाव से अन्य जीवो को धर्मोपदेश देते हैं। विरक्त आत्माओं की योग्यता देख कर उन्हें दीक्षा देते है। अपने दोष प्रकट करने वालो को प्रायश्चित विधि से शुद्ध करते हैं। ऐसा आचरण करने कराने वाले ३६ गुणो के धारक आचार्य कहलाते हैं।

प्रश्न—उपाध्याय किसे कहते है ?

उत्तर—जो बहुश्रुत (अनेक शास्त्रो के ज्ञाता) होकर चतु-र्विध संघ को पठन-पाठन कराते हैं । चरण-करण के ज्ञाता होते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं । इनके २५ गुण होते हैं—११ अग १२ उपाग एव चरण-करण = २५

प्रश्न—साधु किसे कहते है ?

उत्तर—निम्न २७ गुणो के धारक—५ महाव्रतधारी ५ इन्द्रियजित ४ कषाय-जित १५ भावसत्य १६ करण सत्य १७ जोगसत्य १८ क्षमावन्त १९ वैराग्यवन्त २० मनसमाधारणिया २१ वचनसमाधारणिया २२ काय समाधारणिया २३ ज्ञान सम्पन्न २४ दर्शन सम्पन्न २५ चारित्र सम्पन्न २६ वेदनीय समाअहिया सनिया २७ मरणातियसमा अहिया सनिया ।

समस्त आरम्भ-परिग्रह के त्यागी—सदा ज्ञान-ध्यान में लीन सासारिक-प्रपचो से दूर रहने वाले साधक "साधु कहलाते हैं । अरिहन्त—आचार्य, उपाध्याय एवं साधु इनका समावेश यद्यपि साधुओ में हो जाता है, पर गुणो की दृष्टि से ये भिन्न-भिन्न पद के धारी होते हैं । सासारिक-मोह-माया जाल मे फसे व्यक्ति के, जब मोह की प्रबलता कम होती है—तब अपने कर्मों के क्षयोपक्षम से एवं मुनिराजों के उपदेश से वे विरक्त हो जाते हैं । वैरागी होकर समस्त आरम्भ परिग्रह का त्यागकर वे मुनिधर्म

अंगीकार करते हैं। अन्त समय मे आलोचनापूर्वक सलेखना सथारा कर पंडितमरण को अंगीकार करते हैं।



पाठ ५८

भ० शान्तिनाथ

रमेश—जयजिनेन्द्र, भैय्या सुरेश ! अरे तुम तो कुछ वोलते ही नही, क्या कर रहे हो !

सुरेश—जयजिनेन्द्र भैय्या रमेश !

भैय्या ! मैं अभी शाति जाप कर रहा हू, क्षमा करना इसीलिये तुम से नही बोल पाया।

रमेश—यह शाति-जाप क्या है ? इससे क्या होता है ?

सुरेश—सोलहवे तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ का स्मरण कर रहा था, इससे शाति प्राप्त होती है।

रमेश—तो क्या अन्य तीर्थंकरो के जाप से शाति नही मिलती ?

सुरेश—नही भैय्या रमेश ! ऐसी वात नही है। सभी तीर्थंकरो मे समान शक्ति है। किसी भी तीर्थंकर के जाप से शाति मिलती है पर न मालूम क्यो मुझे शांति नाम ही ज्यादा प्रिय है ? इसीलिये मैं विशेप कर शाति भगवान् का ही जाप किया करता हू।

दूसरा बाज। कबूतर फडफड़ाता हुआ दरबार में बैठे राजा की गोद मे आ बैठा। कापते हुए कबूतर को सहलाते हुए पुचकार कर राजा ने कहा—"घबरा मत अब तू मेरी शरण मे आ गया है तेरा बाल भी बाका नही होगा।' इतने मे बाज भी पीछे आया और कहने लगा—"राजन्! कबूतर मेरा शिकार है, मुझे दे दीजिये—मुझे भूख लगी है। मैं मास भक्षी हू—इससे मैं अपनी क्षुधा तृप्त करूंगा।" राजा ने कहा—"भाई! यह कबूतर मेरी शरण मे है, इसे मैं नही दे सकता।"

बाज—तो आप दूसरा कबूतर या अन्य किसी प्राणी का मास मगाकर दीजिये।

राजा—नही भाई! "एक की रक्षा कर दूसरे का मांस देना" यह कैसे हो सकता है? मिठाई आदि अन्य पदार्थ जो तुम चाहो ले सकते हो।

बाज—मैं तो मांसभक्षी हू, राजा यदि आप अपने शरीर का मांस दे सकते हैं तो आप अपने शरीर का मास इसके बराबर तौल कर दे दीजिये।

राजा—यह तो बडी ही प्रसन्नता की बात है। मन्त्रीजी! "तराजू मंगवाइये।"

मन्त्री—एक कबूतर के पीछे अपने शरीर की आहूति देना कहा तक ठीक है?

राजा—नही मंत्री! जब यह मास ही चाहता है, तो इसकी

इच्छा मेरे मास से ही पूरी की जा सकती है । तराजू मगवाकर राजा ने अपनी जाघ का मांस काट कर एक पलड़े मे रखा । दूसरे पलड़े में कबूतर । देव-माया से कितना भी मांस काट कर रखा गया पर कबूतर का पलड़ा भारी ही रहा । तब राजा स्वय तराजू मे बैठने के लिये उठा । देव ने अपने ज्ञान में राजा की भावना जानी और अपना असली रूप प्रकट कर राजा के शरीर को पुन: जैसा का वैसा बना दिया और अपने अपराधों के लिये क्षमा मागकर चला गया । इसी दयालुता के कारण मेघरथ राजा आगे चलकर शांतिनाथ भगवान् बने–जिससे गर्भावस्था में नगर में फैली बीमारी दूर हुई ।

रमेश भैय्या हम भी इस प्रकार की दयालुता के गुण अपनावेगे तो हम भी शातिनाथ भगवान् जैसे बन सकते है ।



पाठ ५९

श्लोक

ब्राह्मी चन्दनवालिका भगवती,
राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा,
सीता सुभद्रा शिवा ।

रमेश—अच्छा ! भ० शातिनाथ के विषय मे कुछ बातें बतलाओ।

सुरेश—हस्तिनापुर नगर के राजा विश्वसेन की धर्मपरायणा रानी अचिरा जव गर्भवती थी तब नगर मे 'मरी' का रोग फैल गया था। लोग फटाफट मरने लगे। नगर निवासियो से महाराज विश्वसेन को इस विषय की जानकारी प्राप्त हुई। वे चिताग्रस्त हो गये। भोजन का समय होने पर महारानी ने दासी को भेजा कि—"महाराज को बुला लाओ।" दासी दरबार मे गई, पर राजा को चिंतित देख वापस लौट आई। तब महारानी ने स्वय दरबार में जाकर महाराज से निवेदन किया। जब महाराजा ने ध्यान नही दिया तब महारानी ने राजा के चरणों का स्पर्श किया। राजा चौंके और पूछा महारानी जी आप यहा दरबार मे कैसे ? तब रानी ने सब वृत्तान्त कहा—और पूछा कि—"आज आप किस चिन्तन मे इतने मग्न है ?" महाराजा ने कहा—"रानी ! जिनके पीछे अपने राजा-रानी कहलाते हैं—वह प्रजा रोग-ग्रस्त है, फटाफट मर रही है इसी चिंता मे मग्न हू।" सुनकर रानी तुरत वापस लौट गई महल मे आ, छत पर चली गई। और चारो ओर घूमते हुए यह संकल्प किया कि—"गर्भ-स्थ शिशु का प्रभाव हो तो नगर में फैली हुई बीमारी शात हो जाय।" उसने सात चक्कर लगाये, बीमारी शांत हो गई, नगर निवासियो ने महाराजा को यह खुश खबर सुनाई। सुनकर महाराजा प्रसन्न

हुए और महारानी को यह खुश खबरी सुनाने महल मे आये। 'रानीजी ऊपर छत्त पर गई है,' ऐसा दासियो से ज्ञात होने पर महाराजा ऊपर छत्त पर पहुचे। रानी को चक्कर लगाते देखकर महाराजा ने कहा—"रानी, बस बस, तुम्हारी साधना सफल हो गई नगर में शाति छा गई।"

रानी ने महाराजा के चरणों मे नमस्कार कर कहा—"राजन्! यह सब इस गर्भस्थ बालक का प्रभाव है।" तब महाराजा और महारारी दोनो ने निश्चय किया कि "बालक का नाम शातिनाथ रखा जाय।"

रमेश—उस बालक का ऐसा क्या प्रभाव था, जिससे नगर मे शाति हो गई?

सुरेश—भैय्या रमेश! तुमने राजा मेघरथ का नाम सुना होगा वही राजा मेघरथ यहा भ० शातिनाथ बने। जिनके प्रभाव से नगर मे शाति हुई।

रमेश—राजा मेघरथ का नाम तो सुना पर उन्होने ऐसा क्या किया!

सुरेश—महाराजा मेघरथ बहुत ही दयालु एव शरणागत-वत्सल थे। उनके इन गुणों की कीर्ति विश्व मे क्या, इन्द्रलोक मे भी फैल गई। महाराजा मेघरथ के इन गुणों की प्रशंसा इन्द्र से सुनकर दो देव राजा की परीक्षा के लिये आये। एक कबूतर बना-

दूसरा बाज। कबूतर फड़फड़ाता हुआ दरबार मे बैठे राजा की गोद मे आ बैठा। कापते हुए कबूतर को सहलाते हुए पुचकार कर राजा ने कहा—"घबरा मत अब तू मेरी शरण मे आ गया है तेरा बाल भी बाका नहीं होगा।' इतने मे बाज भी पीछे आया और कहने लगा—"राजन्! कबूतर मेरा शिकार है, मुझे दे दीजिये—मुझे भूख लगी है। मैं मास भक्षी हू–इससे मैं अपनी क्षुधा तृप्त करूगा।" राजा ने कहा—"भाई! यह कबूतर मेरी शरण मे है, इसे मैं नही दे सकता।"

बाज—तो आप दूसरा कबूतर या अन्य किसी प्राणी का मास मगाकर दीजिये।

राजा—नही भाई! "एक की रक्षा कर दूसरे का मास देना" यह कैसे हो सकता है? मिठाई आदि अन्य पदार्थ जो तुम चाहो ले सकते हो।

बाज—मैं तो मासभक्षी हू, राजा यदि आप अपने शरीर का मास दे सकते हैं तो आप अपने शरीर का मांस इसके बराबर तौल कर दे दीजिये।

राजा—यह तो बडी ही प्रसन्नता की बात है। मन्त्रीजी! "तराजू मंगवाइये।"

मन्त्री—एक कबूतर के पीछे अपने शरीर की आहूति देना कहा तक ठीक है?

राजा—नही मत्री! जब यह मास ही चाहता है, तो इसकी

इच्छा मेरे मास से ही पूरी की जा सकती है । तराजू मगवाकर राजा ने अपनी जाघ का मांस काट कर एक पलड़े मे रखा । दूसरे पलडे में कबूतर । देव-माया से कितना भी मांस काट कर रखा गया पर कबूतर का पलड़ा भारी ही रहा । तब राजा स्वयं तराजू में बैठने के लिये उठा । देव ने अपने ज्ञान मे राजा की भावना जानी और अपना असली रूप प्रकट कर राजा के शरीर को पुन: जैसा का वैसा बना दिया और अपने अपराधों के लिये क्षमा मागकर चला गया । इसी दयालुता के कारण मेघरथ राजा आगे चलकर शांतिनाथ भगवान् बने–जिससे गर्भावस्था में नगर मे फैली बीमारी दूर हुई ।

रमेश भैय्या हम भी इस प्रकार की दयालुता के गुण अपनावेगे तो हम भी शांतिनाथ भगवान् जैसे बन सकते है ।



पाठ ५९

श्लोक

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती,
राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा,
सीता सुभद्रा शिवा ।

कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता,
चूला प्रभावत्यपि ।
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं,
कुर्वन्तु नो मंगलम् ।

अर्थ :—ब्राह्मी, चन्दनबालिका, राजीमती, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवादेवी, शीलवती कुन्ती, नल की पत्नी दमयन्ती, चूला, प्रभावती पद्मावती तथा सुन्दरी ये सोलह महासतियां प्रतिदिन हमारा मगल करे ।

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं ।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ।

अर्थ :—हे वीतराग देव ! मुझे ऐसी वृत्ति प्रदान कीजिये, जिससे कि प्राणिमात्र पर मैत्री भाव, दु.खियो पर दया भाव और शत्रुओं पर मध्यस्थ भाव बना रहे ।

●

पाठ-६०

पालो दृढ़ आचार

(तर्ज . वो दिन धन होसी)

पालो दृढ़ आचार, जैनो ! सब मिलकर ।।ध्रुव।।
प्रात.काल सदा उठ जाओ, पहले धर्म मे चित्त लगाओ ।
आलस दूर निवार ।। १ ।। जैनो सब....

संतो को पचाग नमाओ, देव धर्म को मन मे ध्यावो ।
जपो मन्त्र नवकार ।। २ ।। जैनो सब....

सामायिक का लाभ उठावो, प्रभु प्रार्थना विधि से गाओ ।
करो मधुर उच्चार ।। ३ ।। जैनो सब....

नित्य नियम चौदह चितारो, व्रत पच्चखाण नया कुछ धारो ।
रोको आश्रव द्वार ।। ४ ।। जैनो सब....

करो मनोरथ–त्रय का चिन्तन, अरु विश्राम चार का सुमिरन ।
भावो भावना बार ।। ५ ।। जैनो सब....

सुनो सदा मुनियो का भाषण, पूछो प्रश्न करो हल धारण ।
सीखो ज्ञान अपार ।। ६ ।। जैनो सब....

छाने विना न पानी पीवो, अशुद्ध भोजन कभी न खाओ ।
पालो नित तिविहार ।। ७ ।। जैनो सब....

अष्टम पाक्षिक पौषध धारो, प्रतिक्रमण कर दोष निवारो ।
प्रायश्चित लो धार ।। ८ ।। जैनो सब....

सोते समय करो संथारा, आयुष्य का रखो आगारा ।
उठने पर लो पार ।। ९ ।। जैनो सब....

'महा-मत्र' को कभी न भूलो, हर कामो मे पहले वोलो ।
अथवा 'लोगस्स' चार ।। १० ।। जैनो सव....

जैन धर्म पर रखो श्रद्धा, करो न झूठी पर-मत निन्दा ।
रहो सदा हुशियार ।। ११ ।। जैनो सव..

रहो परस्पर हिलमिल जुल कर, कलंक निन्दा चुगली तज कर
करो संघ जयकार ।। १२ ।। जैनो सब....

जो जिन धर्म लजावे कोई, उनको साथ न देना कोई ।
कर दो बहिष्कार ।। १३ ।। जैनो सब ...

सात व्यसन को दूर निवारो, बारह श्रावक व्रत स्वीकारो ।
लो इक्कीस गुण धार ।। १४ ।। जैनो सब....

जीवन जीओ ऐसा सुन्दर, लगे सभी को प्यारा सुखकर ।
'पारस' करे पुकार ।। १५ ।। जैनो सब ..



पाठ ६१

स्थानकजी में जाएं

(तर्ज · सुबह और शाम की..)

बहिन . आओ भैया ! आओ देरी न लगाओ,
स्थानकजी मे जाए ।टेर।

भाई आओ, बहिन ! आओ, देरी न लगाओ,
स्थानकजी मे जाए ।टेर।

ब० मुनिराजो के होगे दर्शन, मागलिक हमे सुनाएंगे ।
कुछ-कुछ ज्ञान नया सीखेगे, पच्चखाणो को धारेगे ।।
उत्तरासन ले आओ,या मु हपति ले आओ ।स्थानकजी।१।

भा० विनय बढेगा मन वचन तन में श्रद्धा दृढ हो जाएगी।
आंख ज्ञान की खुल जाएगी, पाप क्रिया छूट जाएगी ।।
आसन लेकर आओ, पूंजाणी लेकर आओ ।स्थानकजी।२।

ब० मिलेंगे ज्ञानी श्रावकजी भी, सामायिक सिखलायेंगे।
प्रतिक्रमण पच्चीस वोल, नवतत्त्वादिक रटवायेंगे ।।
माला लेकर आओ, पोथी लेकर आओ । स्थानकजी ।३।

भा० मीठी-मीठी अच्छी-अच्छी, धर्म कथा सुन पाएगे ।
जीवन अपना उठेगा ऊंचा, हम महान् वन जाएगे ।।
झटपट-झटपट आओ, जल्दी-जल्दी आओ ।स्थानकजी।४।

ब० मुनि बनेंगे एवन्ता से, महासती चन्दनबाला ।
या फिर आनन्द कामदेव से, चेलना जयन्ती वाला ।।
सन्तुष्ट हो आओ, हर्षित होकर आओ । स्थानकजी ।५।

दोनो भाई-वहन वे भी जाते हैं, हम भी सग हो जाए ।
सव मिलकर हम जैन धर्म की, ध्वजा सदा फहराए ।।
खेल छोडकर आओ, कूद छोडकर आओ । स्थानकजी।६।

दोनो : केवल पत्थर नही रहेगे 'पारस' हम वन जायेगे ।
ज्ञान क्रिया का आराधन कर सच्चे जैन कहलायेगे ।।
आओ सहेली आओ, आओ साथी आओ ।स्थानकची ।७।



पाठ ६२

सामायिक कीजिये

(तर्ज . दिल लूटने वाले जादूगर.....)

यदि आत्मोन्नति अभिलाषा हो तो सामायिक आराधन हो ।टेर।
यदि देह बढे परिवार बढे धन धान्य बढे सुख भोग बढे ।
इनसे ससारोन्नति होती, पर आत्मा का उत्थान न हो ।।१।।

ससार स्वर्ग-सा देख चुके, साक्षात् स्वर्ग भोग चुके ।
अब अमर मोक्ष सुख पाना हो, तो धर्म प्रति आकर्षण हो ।।२।।

सब लोक मे धर्म हो ऐसा है,जो आत्मोन्नति कर सकता है ।
यदि साधु धर्म सामर्थ्य नही, तो गृहस्थ धर्म अनुपालन हो ।।३।।

श्रावक के कुल बारह व्रत है उनमे सामायिक नौवा है ।
यदि पूरे बारह बन न सके,तो नववा व्रत ही धारण हो ।।४।।

हिसादिक पाप अठारह है, सावद्य योग कहलाते हैं ।।
सावद्य योग तज सवर धर, शुभ योगो का सचालन हो ।।५।।

हिंसा असत्य चोरी मैथुन, अरु परिग्रह ये दुर्गति कारण ।
यदि जीवन भर छोड न पाओ तो,एक घडी भी वारण हो ।।६।।

पाप न करना,न कराना है मन बच काया शुद्ध रखना है ।
जो करे, न उनका वचनो से, या काया से अनुमोदन हो ।।७।।

प्रात· सध्या सामायिक हो,व्याख्यान मे भी सामायिक हो ।

कम से कम एक मुहूर्त समय का,नियम सदा ही धारण हो ।।८।।
कुछ ज्ञान बढे, श्रद्धान बढ़े, चारित्र बढ़े, तप वीर्य बढ़े ।
स्वाध्याय प्रमुख तब ऐसी करो,जिससे सामायिक पावन हो।।९।।
सामायिक सबका भय हरती, सबके प्रति अनुकम्पा भरती ।
उन तीस शेष घड़ियो में भी,अति तीव्र भाव से पाप न हो।।१०।।
वे धन्य-धन्य मुनि महासती हैं जो यावज्जीवन दीक्षित हैं ।
यदि आजीवन दीक्षा न बने तो, एक घड़ी साधुपन हो ।।११।।
'केवल' कहते 'पारस' सुन रे, सब मे सामायिक रस भर रे।
जिससे सब गुण की रक्षक इस,सामायिक का संरक्षण हो ।।१२।।



पाठ ६३

तीन मनोरथ

दोहा

१. आरम्भ परिग्रह अल्प हो, २. महाव्रत हों स्वीकार ।
३. सथारा हो अन्त में, तीन मनोरथ सार ।। १ ।।

पाठ ६४

बारह भावना

१ तन धन कोई नित्य नही है २ दु.ख मे देव भी शरण नही है।
३ यह संसार चक्र है भारी ४ यहां अकेले सब नर नारी ।
५ देह भी अपना नही है जग मे ६ तथा अशुचि ही भरी है इसमे
७ आश्रव सबको सदा रुलाता ८ संवर उस पर रोक लगाता।
९ एक निर्जरा से ही सुख है १० और लोक मे कही न सुख है ।
११ अति दुर्लभ सम्यक्त्व रत्न है १२ जहां अहिंसा वही धर्म है ।
'केवल' कहते 'पारस' सुन रे, सदा भावना बारह भा रे ।
भरतादिक ने इनको भाई, भा कर शीघ्र ही मुक्ति पाई ।

पाठ ६५

चार भावना

१ सब जीवो से रखू मित्रता २ दुष्टो की मैं करू उपेक्षा ।
३ दुखियो के प्रति अनुकम्पा हो ४ अधिक गुणी मे हर्ष सदा दो ।



पाठ ६६

अठारह पाप–त्याग

१ कभी न प्राणी हिंसा करना, २ कभी न झूठी बातें कहना ।
३ नही किसी की वस्तु चुराना ४ कभी न गाली-गुपता करना ।
५ इच्छाओ को नही बढाना ६ कभी न आखें लाल बनाना ।
७ नही किसी से अकड़े रहना ८ कभी न मन मे जाल बिछाना ।
९ कभी किसी का लोभ न करना १० राग मोह मे कभी न पडना ।
११ नही किसी से बैर बसाना १२ नही लडाई झगडा करना ।
१३ झूठ कलंक न कभी चढाना १४ नही बैरी की चुगली खाना ।
१५ निंदा से बचते ही रहना १६ विषयो मे रति अरति न करना ।
१७ माया रखकर झूठ न कहना १८ झूठे मत मे कभी न पड़ना ।
'केवल' कहते [illegible] सुजना, यो तू पाप अठारह तजना
पाप छोड़ [illegible] यदि तू चाहता दुख न करना ।

(पेज ४ का शेष)